

धर्म तुलनात्मक दृष्टि में

धर्म

तुलनात्मक दृष्टि में

डा राधाकृष्णन



राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली

'EAST AND WEST IN RELIGION'

का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

बिराज एम० ए०

मूल्य	।	पाँच रुपये
प्रथम संस्करण	।	१९६३
प्रकाशक	।	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-६
मुद्रक	।	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली

अपने सुहृद्
एल. पी. वेक्स को

क्रम

तुसनारमक घम	९
धर्म में पूर्ण और पश्चिम	१७
प्रसय और सृष्टि	६१
कष्टसहन द्वारा शान्ति	८९
रबीन्द्रनाथ ठाकुर	११२
धनुषमधिका	१२९

पहला अध्याय

तुलनात्मक धर्म^१

मै मैन्सेस्टर कासेज और डॉक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अध्यापकों का धर्मिक आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस व्याख्यात-भाषा में सापथ देने का सुप्रसन्न प्रदान किया है जिसमें धर्म के वर्त्म पर तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार किया जाएगा। यह उचित ही है कि इस विषय का अध्ययन इन महान विद्यापीठ में किया जाए, जहाँ पर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इसकी स्थापना रखी गई थी।

१

तुलनात्मक धर्म विज्ञान की उत्पत्ति

तुलनात्मक धर्म-विज्ञान का विकास मुख्यतया दो कारणों से हुआ है। लेविङ्ग बुक ऑफ द ईस्ट (प्राच्य धर्मग्रंथ) का प्रकाशन और अध्ययन तथा मानवविज्ञान का विकास। इन दोनों ही का प्रेरणा देने का योग डॉक्सफोर्ड के महान अध्यापकों को है। भारतीय धर्म ग्रंथों के निर्मोक्त अध्ययन केन्द्रिक संकलनकार ने इस विषय पर अपने व्याख्यानों द्वारा और प्राच्य धर्म-ग्रंथों का पचास वर्षों में प्रकाशन करके तुलनात्मक धर्म की एक प्रबल गति प्रदान की। संकलनकार ने धर्म-विज्ञान पर किए गए इन व्याख्यानों का अंतर के प्रमुख धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की एक

^१ यह अध्यायन मैन्सेस्टर कासेज डॉक्सफोर्ड में तुलनात्मक धर्म पर ही है, एथनासलनाथ का एथनासलनाथ है जो १९ अक्टूबर, १९१६ को दिया गया था।

भूमिका' नाम दिया है।^१ उनके इस महान कार्य को इस कालक के डाक्टर एस्टमिन कार्लेस्टर ने अपने बौद्धिक और विद्वत्तापूर्ण धर्मपत्रों द्वारा विशेष रूप से भारतीय ईश्वरवाद और बौद्धधर्म तथा ईसाईधर्म के मध्य सम्बन्धों के विषय में धर्मपत्रों द्वारा घासे जारी रखा और जब तक हम ज्ञान की इस शाखा का विकास करते जायेंगे तब तक कार्लेस्टर का नाम सम्बन्धी कृतज्ञता के साथ स्मरण किया जाता रहेगा।

फॉक्सफोर्ड के एक और महान होफेगर सर एडवर्ड टाइसर ने धार्मिक संस्कृति और मानवविज्ञान पर अपनी रचनाओं 'प्रिमिटिव कल्चर' और 'एन्थ्रोपोमॉर्फी' द्वारा मानवविज्ञान के दृष्टिकोण से धर्म के अध्ययन के लिए मार्ग खोल दिया। सर जेम्स फ्रजर की 'द गोल्डन बॉघ' तथा 'टोटेमिज्म ऐण्ड एक्नोर्नेमी' (मुनहनी डाल' नवविज्ञान और बोनेतर विज्ञान) जैसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनाओं ने धर्म के उद्भवों और विकास के अध्ययन के लिए बड़ी भाषा में समृद्ध सामग्री प्रस्तुत कर दी। यहाँ उन अनेक मानवविज्ञानविदों की रचनाओं का उल्लेख करना अनावश्यक है जिनके द्वारा किए गए अध्ययन और धार्मिक जातियों के विश्वासों और उनकी प्रथाओं के अध्ययन से विश्व के कुष्ठ छोड़ने की समझने के लिए मनुष्य द्वारा किए गए प्रारम्भिक प्रयत्नों पर भरपूर प्रकाश पड़ा है। यह वास्तविक और भी प्रसन्नता होती है कि इस विश्वविद्यालय में जिस मानवविज्ञान के अध्ययन का प्रारम्भ सर एडवर्ड टाइसर ने किया था आश्चर्य उसका प्रतिनिधित्व डाक्टर मैट्टे बहुत बौद्धतापूर्वक कर रहे हैं।

विकास के सिद्धान्त के मानवविज्ञान की उन्नति को और इस प्रकार परोक्षरूप से तुलनात्मक धर्म को प्रोत्साहन दिया। मानवविज्ञान इस बात को प्रकट करता है कि सामान्य मति अपरिष्कृत और कम बतिस व्यक्तियों से अधिक परिष्कृत और विकसित स्वरूपों की ओर प्रगति के रूप में हो रही है। इसकी दृष्टि में धर्म मानवीय संस्कृति का एक और जिनकार है

सब नियम लागू होते हैं जो धर्म सामाजिक संस्थाओं पर लागू होते हैं।^१ तुलनात्मक धर्म के अध्ययन की प्रवृत्ति में जिन धर्म्य कारणों का बड़ा होना है, उनमें धर्मोपेक्षा बेबीमोनिया और मृत्यु के मूल शक्तों की क्षिति को ठीक-ठीक पढ़ लिए जाने का भी उल्लेख किया जा सकता है। इसी प्रकार विद्वानों में गए ईसाई-धर्मप्रचारकों का कार्य भी कम नहीं रहा। उन्होंने निम्नतर कबीलों और पारिषद समाजों के धार्मिक विश्वासों और धारणाओं के सम्बन्ध में सावधान और साधिवार विवरण हमारे सम्मुख प्रस्तुत किए हैं।

२

इस अध्ययन पर तपाकचित धारणा

परन्तु जब हम तुलनात्मक धर्म की बात करते हैं तो हमारा धर्मिग्रह यह नहीं होता कि यह कोई एक विशेष प्रकार का धर्म है यह तो धर्म के सम्बन्ध में विचार करने की एक विशिष्ट पद्धति भर है। तुलनात्मक पद्धति का उपयोग ज्ञान के विविध क्षेत्रों में जैसे शरीरशास्त्र और मनोविज्ञान भाषाविज्ञान और विधिज्ञान (कानून) में बड़ी स्पष्ट सफलता के साथ किया गया है। और हाल ही में एक अंशोभी लेखक द्वारा तुलनात्मक दर्शन पर लिखी गई एक पुस्तक भी सामने आई है।^२ फिर भी समय-समय पर धर्म के तुलनात्मक अध्ययन के विरुद्ध प्रतिवाद सुनाई पड़ते रहते हैं।

इसका एक कारण यह है कि हमें कैम्ब्रिज के वैज्ञानिक अध्ययन धर्म्य धर्म के लिए एक संकट समझा जाता है। कारण यह है कि धर्म के वैज्ञानिक विचारों से यह भरोसा की जाती है कि वह सब धर्मों के सम्बन्ध में पूर्ण निरपेक्षता और निष्पक्षता की भावना से विचार करे। उनके लिए कोई भी

१. रैड्फ़ोर्ड, पीटर: 'देवोपेक्षा' (१९१२) अध्याय १।

२. मासेल, एच. पी. 'वैज्ञानिक धर्म'।

एक धर्म उतना ही पक्का है जितना कि कोई धर्म परन्तु धर्म के सम्बन्ध में इस प्रकार की सनातन उदरता की भावना मनुष्य-जाति के बहुत बड़े भाग का भली नहीं लगती। यह कहा जाता है कि धर्म यदि पक्षपातपूर्ण और विधिद्वैतावादी न हो तो वह धर्म ही नहीं। प्रायः धर्मग्रन्थों की पश्चिम की धर्मग्रन्थों से तुलना करना उस उदाहृष्ट और भ्रष्ट की भावना की उपेक्षा करता है जो प्रत्येक व्यक्ति में अपने धर्म के लिए होती है। इस धारणा के उत्तर में कहा जा सकता है कि सत्य किसी भी धर्म की घोषणा नहीं अधिक ऊंचा है और इन मामलों में सच्चा वैज्ञानिक उन रखने का परिणाम सन्तुष्टोपस्था नामरूप में ही होगा, और वह इस प्रक्रिया में होनेवाली हानि की घोषणा अपरिहार्य रूप से अधिक होगा। साथ ही यह पक्का है कि हम धर्मियों के अपने दावों को खोद बैठे फिर भी जिस धर्म में हमारा पालन-पोषण हुआ है उसके प्रति हमारे मन में एक विशेष मनुष्य और धारणा रखना ही।

एक और धारणा यह है कि तुलना का धर्म है मिलान करना और यदि कोई एक धर्म दूसरे धर्म के समान है तो फिर उदरता और धर्मिता के दावों का क्या होगा? निस्सम्बन्ध तुमनात्मक धर्म समानता और उसके साथ-साथ विभिन्नताओं के तथ्यों पर ध्यान देना है। परन्तु समानताओं को स्वीकार करने का यह धर्म नहीं है कि विभिन्नताएँ महत्त्व हैं। यदि हम किसी एक धर्म के लिए धर्म धर्मों से उदर्य होने का दावा करना ही चाहते हैं तो भी यह धारणा है कि हम धर्म धर्मों के दावों और उनकी धर्मवस्तुओं को जाने और उनका मूल्यांकन करें।

फिर, यह कहा जाता है कि यदि तुमनात्मक धर्म हमें यह बताता है कि उच्चतर धर्मों में भी वे बातें पाई जाती हैं जो निम्न और धार्मिक धर्मों में पाई जाती थीं तो यह परिणाम निकालना ठीक होगा कि हमारे धार्मिक विश्वास हमें हीन बनातेवाले और बचकाने ढंग के हैं। उदाहरण के लिए कोन्स्टेन्टाइन का ईसाईयत में वीर्य होना जिसके फलस्वरूप ईसाइयत की विजय हुई, काफी समये समय तक विश्वम सुनिश्चित नहीं था। यह

मित्राँ घोर ईसा के मध्य काफ़ी डाँचाँडाल रहा क्योंकि मित्र का धर्म घोर ईसाइयत धर्मों एक-दूसरे में बहुत मिसले कुमले थे। ईसा की भाँति मित्र भी ईश्वर और मनुष्यों के बीच मध्यस्थ या त्रिमयी मुक्ति एक बलिदान द्वारा मुनिरिचन हुई थी। मित्रधर्म के अनुयायी एक नैतिक विज्ञान में घोर भ्रष्टिपूर्ण जीवन में उतनी ही दुःखता में विश्राम करते थे जितना कि ईसाई। उर्दुमियत त्रिमये इन धर्मों की समानता का कारण समान ही करतूतों को बठाया था मित्रधर्म धर्मों की रोटी और गरब के पवित्रीकरण की प्रथा से विनोयक में विश्रामित हुआ था। इतना ही नहीं धनेक धार्मिक धर्मों में देवता की बलिदानपूर्ण मृत्यु के सम्बन्ध में विश्राम प्रवसित था और जब किसी कबीले का देवता कोई पशु होता था तब यज्ञाशु धर्मों द्वारा दिव्य शरीर का प्रसाद भोज गरम और वास्तुविद होता था। यह विश्राम किया जाता था कि उस पशु उस धीर नायक धर्मवा उस देवता को मारने में प्रकृतों में उस देवता के उचित पुत्र था जाने हैं। इस तरह बलिदान और प्रसाद भोज की प्रथाओं का जो ईसाइयत का मूल आधार हैं मूल इस प्रकार के धार्मिक विश्रामों में दूरा जा सकता है। यहाँ देवता इतना बह देता काफ़ी होगा कि उर्दुमय और महत्त्व के प्रदनों में धायन में धयना कर देना उर्दुमय नहीं है। धार्मिक विश्रामों के ऐतिहासिक उर्दुमय की शोच उनके मूल्य के धामोचनात्मक निर्धारण से विस्तृत मिस्र बस्तु है। इसके समाना पिछड़ी में पिछड़ी जातियों में भी ईश्वर के प्रति गम्भीर भावनाएं और प्रगल्भ मानसाएं मिलती हैं जो भले ही तिननी ही विश्राम क्यों न कर दी गई हों परन्तु फिर भी उनका धस्तित्व है धर्म। इमें धर्मधारण स्वार्थों में भी धार्मिक प्रकाश प्राप्त हो सकता है। मुक्तनात्मक धर्म यह मानता है कि हमारे मय धर्मों का कुछ न कुछ मूल्य है। मेरे लिए धारणों कम से कम इन धर्मों में जो धर्म के सम्बन्ध में उर्दुमय विश्राम-विमय का शक्ति का समर्थक है, यह बनना

समावश्यक है।

इसलिए जो लोग तुमनात्मक धर्म के अध्ययन के परिणामों से बहुत-
 होते हैं वे भी अन्त में इस अध्ययन के परिणाम के लिए इसका आधार
 मानेंगे। कारण यह है कि तुमनात्मक धर्म धर्मविषय रूप से बहु सिद्ध कर
 देता है कि जैसे ही धार्मिक रूपों में अनिश्चित परिवर्तन पाए जाते हैं
 परन्तु स्वयं धर्म एक सावधानीपूर्ण तत्त्व है। दुनिया में सब घोर हमें कुछ कम
 या अधिक समान रूप से पैला हुआ विश्वास और कर्मकांड का एक ऐसा
 समूह बिखाई पड़ता है जो प्रतीयमान भिन्नताओं और व्यष्टि (धर्म
 प्रत्यय) रूपों के बावजूद कुछ मूलभूत तत्त्वों की दृष्टि से एक-दूसरे से मिला
 प्रतीत होता है। धर्म का निवास मनुष्य के मन में है। यह स्वयं मनुष्य के
 स्वभाव का एक भाग है। बाकी प्रत्येक वस्तु बिना ही या सखती है
 परन्तु ईश्वर में विश्वास जो ससार के सब धर्मों की धर्म स्वीकृति है
 दोष रह जाता है। धर्म बाहे किन्तु ही रूप क्यों न बदल ले परन्तु वह तब
 तक बना रहेगा जब तक कि मनुष्य जो कुछ वह है—धर्मद्वि दक्षिण और
 दुर्बलता का सम्मिश्रण—बना रहेगा। मानवविज्ञान के अध्ययन में प्रकट
 हुए धर्म की प्राथमिकतम धर्मव्यक्तियों से इस बात की पुष्टि होती है।
 मानव-जाति की सामान्य सहस्रति की मानवीय धारणाओं की उस
 छावनीय लामसा की जिसे कि परमात्मा के अस्तित्व के प्रमाण के रूप में
 प्रयुक्त किया जाता रहा है तुमनात्मक धर्म द्वारा निकाले गए परिणामों
 से बड़े प्रमाणाधीन रूप में पुष्टि होती है। ज्येठों की पुस्तक 'मौज' में जब
 ऐन्से के अभ्यास में जीट के कमीनिवास से परमात्मा का अस्तित्व
 प्रमाणित करने को कहा तब कमीनिवास ने जो युक्तियाँ प्रस्तुत की थीं
 (१) विश्व की सुस्पष्टता और अस्तुओं की नियमितता और (२) नए-
 नए माहौल में अस्तित्व अस्तित्व इन सब विभिन्न धर्मव्यक्तियों के पीछे
 एक ही मन्त्रिप्राय एक ही प्रयाय और एक ही मन्त्रा विद्यमान है। सब
 धर्मों का धर्म मानवीय मन की पवित्र भूमि में होता है और सबको

जीवन एक उछी धारणा से प्राप्त होता है। ये विभिन्न प्रणामिया उस प्राण्यारत्मिक वास्तविकता के साथ परीक्षणारत्मक समजन (ताममेस) है जो कुछ कम या अधिक सम्तीयजनक है। तुलनात्मक धर्म यह बताकर कि मानवीय धारणा एक ही प्राण्यारत्मिक वास्तविकता के प्रति सामायित् रहुती है और किसी न किसी रूप में यह वास्तविकता मानवीय धारणा पर प्रभाव डालती है विभिन्न धर्मों की समानताओं का कारण बतसाता है। इस प्रकार तुलनात्मक धर्म कट्टरता का समर्पण मने ही न करे पर यह अविश्वास (नास्तिकता) को भी प्रथम नहीं देता।

३

इस अध्ययन का महत्त्व

तुलनात्मक धर्म हमें बताता है कि सब धर्मों का कोई न कोई इतिहास रहा है और उनमें से कोई भी धर्म अन्तिम या पुरुष नहीं है। धर्म एक गति है एक विकास और सब सभ्ये विक्रमों में नूतन पुरातन के ऊपर टिका होना है। प्रत्येक धर्म में पुरातन के अवशेष विद्यमान हैं। इतना ही नहीं यदि हम धर्म के वर्तमान रूपों से सम्नुष्ट न हों तो हम एक अन्वय अव्येसाकृत सभ्ये रूप की धारणा कर सकते हैं। यदि धर्म के रूप ईवीय इच्छा की अन्तिम और अमातीठ अन्वियकृतियां हों तो हमें साधता पुरुषों द्वारा सिद्धियों को अवीनस्य बनाए रखने तथा अन्वय अनेक बुराईयों को परमात्मा का कार्य स्वीकार कर लेना होगा। यदि हम स्पष्टभावी हों तो हम इस बात को स्वीकार कर लेंगे कि जिन देवताओं की हम पूजा करते थे वे किसी भी प्रकार अाधतं नहीं थे। प्रत्येक सोचे जा सकने योग्य अवराध और कूरता का अाधेय इन देवताओं में किया गया हालांकि इनसे उन

१. बेन्डिन्ग बनाई रां द देवदेवर्णम अाक द अीक धर्म एत इर लर्षे अेर गांज (१९९५)।

बेबताओं के मकतों द्वारा उनकी ओरसाह पूजा में कोई व्याघात नहीं पड़ा। यदि हम बालहत्या के सिद्धान्त के आधार पर—जिसके विषय में सन्देह प्रकट करना काफी हाम तक भी किसी भी व्यक्ति को अविवेकासी या नास्तिक भीषित करने का पर्याप्त कारण होता था—तो ईसाइयों के परमात्मा भी बहुत माननीय नहीं था। इसलिये यह धनुर्नृति बड़ी सार्वजनिक प्रवृत्ति थी कि धर्म की कोई भी अभिव्यक्ति सम्पूर्ण और परम नहीं है। इसका अर्थ है कि इस प्रकार के विश्वास द्वारा संसार को कुछ का माईमा के धनुर्मायी न बनाया जा सके परन्तु इसके द्वारा एक कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो जाता है और वह कार्य है धार्मिक मतभेदों की व्याख्या करने और उनमें परस्पर में बिठाने का और स्वयं धर्म को उस क्षण में यथागत का जोकि वर्तमान प्रजासिद्धों को प्रसन्न रहा है।

इसके प्रतिरिक्त जब तक तुलनात्मक धर्म निरन्तर कामचीस रहा है हमारा यह एक मौकिया और धर्मनानिक ढंग से ही कार्य करता रहा है बुद्धिमान लोग सदा से इस बात को समझते रहे हैं कि प्रत्येक धर्म ऐसे ही जो अपने पुनर् विश्वासों और विधि-विधानों द्वारा जिनका रूप-निर्धारण उनके अपने पुनर् परिवेशों के द्वारा हुआ था मनुष्यों के जीवन को निर्मित करने का दावा करते रहे हैं। जब वैदिक धर्म इन्डिया और भारत की प्राचीन जातियों से मिले तब तुलनात्मक धर्म प्रारम्भ हुई और धार्मिक युगों या विचार-विमर्श किया गया। प्राचीन यूनानी लोगों को अपने पास-पड़ोस में प्रचलित विभिन्न साधारण के सम्बन्ध में पर्याप्त रवि भी और हिरोडोटस ने मिस्रवासियों, ईरानियों सीथियावासियों तथा बर्बरता के धर्म पर विद्यमान धर्म कबीलों के विश्वासों और रिवाजों के सम्बन्ध में हमारे लिए कुछ उचितता मिल छोड़ी है। गुरु-गुरु में ईसाइयत और यहूदी धर्म एक-दूसरे के मुकाबले में थे। टैसिटस और टायर के मैक्सिमस कुछ कुछ ज्ञानी (स्पीस्टिक) लोगों और विद्वानों को धर्म धर्मों का ज्ञान था। यूरोप पर धर्मों के धार्मिकों में ईसाइयत की इस्लाम के सामने सा प्रकाश किया। सम्राट प्रवर और प्रत्येक धर्म के धर्मप्रचारक अपने-अपने ढंग से

तुमनात्मक धर्म

तुमनात्मक धर्म के आविष्कार थे।' इनमें से केवल कुछ मामलों में तुमनात्मक धर्म धर्ममण्डलशास्त्र (धर्मोत्पत्तिशास्त्र) की एक शाखा या प्रीर पथम सांग हमारा प्रयोग अपने-अपने धर्मों के पक्षपोषण के लिए किया करते हास ही में तुमनात्मक धर्म के अध्ययन में जो परिवर्तन हुआ है उ फलस्वरूप इसके अध्ययन की दिशा की भावना और जानकारी की स कता (पक्षार्थता) दोनों में समान रूप में परिवर्तन हो गया है। जो कुछ हमारे सामने आता है, वह प्रभावकारी बिना-भाव नहीं अपितु अपेक्षाकृत सही-सही जानकारी के ऊपर आधारित तुमनात्मक प्राकृतन है। ✓

४

ईसाई-धर्मप्रचारक और भारतीय धर्म

इस बात को भारतीय धर्मों के प्रति भारत में ईसाई-धर्मप्रचारकों की मनाकृति के मातृक प्रदत्त का हवाला देकर और अचिन्त स्पष्ट किया जा सकता है। यह रूप बहुत कुछ उड़ी हंग से बदलता गया है जिस हंग से कि ब्रिटेन और भारत के बीच राजनीतिक सम्बन्ध बनसते गए हैं। ब्रिटेन और भारत के बीच राजनीतिक सम्बन्धों को मोटे तौर पर तीन अवस्थाओं में धर्मम प्रलय पहचाना जा सकता है (१) ईस्ट इण्डिया कंपनी (२) ब्रिटिश साम्राज्य और (३) ब्रिटिश राष्ट्रमंडल। इनमें से पहली अवस्था में भारत केवल शोषण के लिए एक शीब था। उसके धर्म कोई अधिचार नहीं थे और जोन कम्पनी उसके प्रति धारण ग ध्वस्तार करना भी धारणरु नहीं ममझनी थी फिर धडा का तो कहना ही क्या ! उस बात के ईसाई-धर्म प्रचारक इस बात को स्वीकार नहीं करते य कि भारतीय धर्मों में भी कोई

समस्त धर्मवा मूर्खान बन्तु है। उनकी दृष्टि में यहाँ के स्वामीय धर्म केवल धर्मकार धीरे दृष्टियों का पुत्र-मात्र से निकला कि उदार नहीं हो सका था। वे तोय मूर्तिपूजक धर्मों से धर्मविक्रम कृपा करते थे धीरे उन्हें धामूलपुत्र उन्मूलित कर देना चाहते थे। मानव-मन की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि यह यह समझता है कि उसका धर्मता देवता तो सारी पृथ्वी का ईश्वर है धीरे धर्म सब देवता मनुष्य के हाथों द्वारा बनाए गए बोधा धड़ी-मात्र है। विद्याप हेबर का प्रसिद्ध गीत मूर्तिपूजा के लंडन की इस भावना को बड़े धर्मों ढंग से प्रकट कर देता है।^१ उस समय न केवल ईसाईधर्म के

१. फ्रीलैंड के विमान्धारिण फ्लैंड से लेकर
 भारत के म्नेरने समुद्रतक
 यहाँ कि जहाजों के रूप में किनमिमाने हुए धरने
 अपना सुनहली गाल पर धीरे की ओर बहते धारों हैं
 धर्मक प्राचीन धर्मियों के छर से
 धर्मक धर्म धर्मों से धरे धर्मों से
 वे हमको पुकार रहे हैं कि धर्मसे
 हम धर्मके देता दो धर्मियों की मूर्तियाँ से मुक्त कर लो ।

यथा धर्म कि धर्मियों की मूर्तियाँ सारी धर्मों
 धर्म-धर्म धर्मोंके के धर्म के धर्म से धर्मों हैं।
 धर्मों धीरे धर्मों धर्मों धर्मोंके हैं
 धर्मों धर्मों धर्मोंके हैं ।
 धर्मों धर्मों धर्मोंके के धर्मों
 धर्मोंके के धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके हैं,
धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके के धर्मोंके
धर्मोंके धर्मोंके के धर्मोंके धर्मोंके हैं ।

यथा हम लोग, धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके हो धर्मोंके हैं
 धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके हैं,
धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके
धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके धर्मोंके हैं ।

सामान्य प्रचारक धर्मितु उच्च बौद्धिक स्तर के धर्मिक ईसाई पुरुषों और स्त्रियों का भी यह विश्वास था कि ईसाइयत ही एकमात्र सच्चा धर्म है और धर्म सब धर्म विमलुम मिथ्या है। इस उच्च प्रचार में केवल एक भाषात्मक वस्तु, उदारता, का धनाव था।

१८६८ में भारतीय अति के बाह—अंति धारक भी—ब्रिटिश सरकार ने भारत का कायमार सभाम लिया और भारतीय जनता के कुछ अधिकारों और हितों को स्वीकार किया परन्तु भारत एक पराधीन राज्य बन गया एक साम्य के निमित्त एक साधन और ब्रिटेन के हित सर्वोपरि थे। फिर भी यह ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय की धरणा सुमरी हुई दया थी। इसी प्रकार इस दूसरी धरणा के ईसाई-धर्मप्रचारकों ने धार्मिक-साधक प्रचार की अर्थता को अनुभव कर लिया और धर्म के भारतीय धर्मों को प्रबन्धविश्वास का पुत्र और विधमता का धर्म मान बतटाकर उनकी उपेक्षा नहीं कर रहे थे धर्मितु धर्म के मानते थे कि इन धर्मों में भी कुछ धरणाइयां विद्यमान हैं। जो धार्मिक विकास जामीस घटाणियों से भी अधिक समय तक बना रहा और जिसकी साध्यात्मिक उन्नतता उस कोटि तक पहुँच गई कि वह अन्य धर्मों को अष्ट कृतियों से सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकती है उसे यह कहकर नहीं टाना जा सकता कि उनमें कोई ऐसा मूल्य नहीं है, जिसके कारण वह इतन दिन तक बचा रहा। अन्य धार्मिक प्रजातियों को इस रूप में माना जाने लगा कि वे तैयारी की धरणा हैं और ईसाइयत उनके धिरोमधि और उनकी धरम परिपति है। जहाँ पहुँची प्रकृति टर्मुमियन की भावना की बाह दिशाटी थी जिसे विधमियों धधना मूर्तिपूजकों में

मुक्ति, प्रजा मुक्ति,

यह धर्मनिरपेक्ष धर्मितु पर एक मूलनी रहे
 धर एक कि दूर से दूर रिना प्रबेक धर्म
 धर्माता के नाम को धर्म न बाप।

१ सुमना कर्मिक, मिन्डन ध 'हम धर्म र धर्मिन धर्म धरररर धर्मिनो ।
 धध ही धेधिन, धलरर धुन : रर धिधिररररिती दू, (१९११), धध २९।

संतान की कारखानों के सिवाय और कुछ दिखाई नहीं पड़ता था वहाँ बहु
 दूसरी मनोवृत्ति बहु ही जिसे सेष्ट पॉल ग्रांगियन का समर्पण प्राप्त है और जो
 प्रत्येक विद्या में 'मुसमाचार' (गॉरोस) के लिए तेपारी के विद्वानों को स्वीकार
 करते थे । सेष्ट पॉल मुठिपूजकों को इस रूप में देखते थे कि 'वे भी पर
 पारमा की शोच कर रहे हैं जिससे घायब वे उसे करी पा सकें । उनकी सब
 चतुर्व्यो के लिए सब कुछ होने की नीति घनातपून अवसरवार का परिणाम
 नहीं है । यही मनोवृत्ति चतुर्ब 'मुसमाचार' में घनेक युवाजी पाठरियों में
 मध्ययुग के विचारकों में और ईसाई धर्म्यामवाचिकों में विद्यमान है । यह
 कहा गया है कि पुराने धर्मों में पाई जानेवाली प्रायक मूस्यवात वस्तु नये धर्मों
 में सुरक्षित है, क्योंकि ईसा पूर्व करने के लिए प्राया वा विनाश करने के
 लिए नहीं । वि टिमिजस क्वेस्ट डॉफ इन्डिया (भारत का धार्मिक धम्बेपथ)
 की प्रथमासा इस दृष्टी अवस्था को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है । परन्तु
 इस सारी अवस्था में यह साभ्राम्यकारी व्यक्ति विद्यमान है कि ईसाइयत
धार्मिक भावना की सर्वोच्च धर्मिष्वाक्ति है और यह कि यह मानव-जाति
के लिए नैतिक मानक है । जबकि धर्म प्रत्येक धर्म की परत इसके द्वारा
 ही की जाती है ।

१९१७ में महायुद्ध के बीच में—युद्ध घाबरपक था ठही बातु कमी
 दूसरी बातु से नहीं पिसरी जब उस भाग में डाला जाता है केवल ठही
 उसकी कठोरता इवित होयी है—इरेम और भारत के मध्य सम्बन्धों
 की एक नई बारम्बा की घोषणा की गई और भारत को यह बताया गया
 कि यह स्वतन्त्र स्वशासी राष्ट्रों के ब्रिटिश राष्ट्रव्यवस्था का एक सबस होना
 साभ्राम्य के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रयाजनों के लिए एक समबध भावी
 धार । जब यह घोषणा का प्रस्त—जैसाकि यह जॉन कम्पनी के दिनों में वा—
 घयना हमारे पर साधन का प्रस्त नहीं रहा—जैसाकि यह साभ्राम्य के दिनों
 में था—घयितु स्वतन्त्र मानीवारी का प्रस्त था । यह मरप घभी भी घादर्य
 के लेन में ही है और उपनरप उपनरता के लेन में नहीं आया । युद्ध देनाई
 धर्म के लिए एक महान परीक्षा का समय था जिसमें ईसाईधर्म एक बहुत

बड़े पैमाने पर रक्तपात का समर्पण करता-सा प्रतीत होता रहा। धारमय्यानि और धारमाभोजना की मनोबता अधिक प्रबल हो गई और इस नये बातावरण ने धर्म धर्मों की भावना और मूल्य को समझने के लिए अधिक प्रयत्न प्रदान किया।

हमारे काल का सबसे अधिक प्रभावोत्पादक तत्त्व विचार का बढ़ता हुआ एकीकरण है। विज्ञान हमें निरन्तर एक-दूसरे के साथ परिचित निकटता में ला रहा है और मानव-जाति को प्रदूषित नये नमूनों में बुन रहा है। हम इस ग्रह (पृथ्वी) के एक छत्र से दूसरे छत्र तक इंच-इंच को जानते हैं और हमारे संसार के साथन हमारे पूर्वजों की विचित्र स विचित्र कल्पनाओं को भी साथ गए हैं। हम अनुभव करते हैं कि हमारे संसार में भिन्न धर्म सत्तार हैं और हमारे विचार और धर्म में भिन्न धर्म विचारबाराण और धर्म भी हैं। एक-दूसरे से विषम संवृतिवा और धर्म एक-दूसरे के निकट ला पटके गए हैं और यह कठिन है कि हम उनकी मर्यादा का पार में पार्ले सीखें। उदाहरण के लिए हिन्दुधर्म को लीजिए। अनेक धर्माग्रियों तक हमके बौद्ध ने लडिया मध्यपूर्व और मुसुरपूर्व के एक विद्यालय भाग को मुग्य किए रखा है। बौद्धधर्म जैनधर्म और सिखधर्म के प्राज्ञा प्रदाना समेत इनके अनुयायी करोड़ों लोग हैं। अनेक सड़ाट्ट धर्मों में हम बुधमने की श्रेष्ठा की परन्तु यह धर्म भी जहाँ का तहाँ विद्यमान है। अनेक प्राचीन और धार्मिक धारमाभक्तों में इनके मार डाला हमकी मृत्यु का प्रमाणपत्र दे दिया और हमकी धर्मसंघि में कर दो और फिर भी यह वही का वही है। ऐसे व्यक्ति जोकि शैक्षिक दृष्टि में विभीमे कम नहीं हैं जो शैक्षिक दृष्टि में विरे हुए नहीं हैं जो अपने निर्धर्मों में और सामान्य बस्तुओं का महत्त्व देने में सम्य सोचों में भिन्न नहीं हैं माथी और रबोखनाप टाडुर उस ध्यारित, धारन धारनों हिन्दू हान का बोधा स्वाकार करते हैं।^१ ऐसा धर्म हमारे मन में

१. यह धारनेट लाना ता तुमना की रूप विधाने कहा था कि धर्मों हिन्दुधर्म के मूल का विधान का तुमना है (र भी यह धर्मों के लिए वरर का है।)

प्रति उत्पन्न नहीं कर सकता और न हमारी मूला को ही आपत्ति कर सकता है। वह हमारी उत्पत्त्या को बनाता है। हम वह जानना चाहते हैं कि इसकी शक्ति के स्रोत और इसकी सुप्रोन्नता का उद्गम क्या है। इसकी शक्ति से प्रपत्ती का वह बीच केना घटुरमुर्म की ही नीति है जो कही भी पहुंचाती नहीं। यह प्राच्य बर्म की बात नहीं कि यहाँ-तहाँ हमें ऐसे विचार भीम बर्मप्रचारक दिखाई पड़ते हैं परन्तु वे बहुत अधिक नहीं हैं जो हमें पताते हैं कि भविष्य का बर्म मनु-प्रतात्पर्य के एक स्वतन्त्र साहचर्य के रूप में होगा जिसमें सम्पर्क और विनिमय द्वारा प्रत्येक मनु को एक नई धारा और नया जीवन प्राप्त होगा। इस नई मनुवृत्ति के मूल स्वर को 'मातृ शब्दी' शब्द द्वारा व्यक्त किया जाता है। पूर्व और परिवर्तन के विभिन्न बर्मों के व्यक्तियों को अपने विषय बर्तनों और प्रत्यक्ष दृष्टियों आशाओं में आसक्तियों आसक्तियों और मनुओं में सम्मिलित कर दिया गया। यह बात है कि राजनीतिक शक्ति की भाँति इस क्षेत्र में भी वह शक्ति केवल एक महत्त्वाकांक्षा अधिक है और वास्तविकता कम। तुलनात्मक बर्म उन बर्म के मध्य जा एक अनुसंधानवृत्ति विविक्तता या एकता में नहीं रहते स्वतन्त्र मनुवादी के इन आदर्शों को माने बढ़ाने में हमारी सहायता कर रहे हैं। वे बर्म अब विभिन्न परीक्षण समझे जाते हैं जो एक स्वतन्त्र ही पूजनयोग सम्पत्ता को उत्पन्न करने के लिए एक-दूसरे पर प्रभाव डाल रहे हैं। वे सब के सब एक उच्चतर और स्वतंत्र जीवन के निर्माण के लिए एक साथ प्रयत्न में जुटे हुए हैं। वे एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए का करनेवासे साथी कार्यकर्ता हैं। हमारा वह कर्तव्य है कि हम जानें उन मनुवादिनों से हाथ मिलानें और स्वार्थ एवं सुखार्थ सम्पत्तियों एवं प्रयत्न व शक्तियों पर आक्रमण करें।

1. 'सिद्धेय शक्ति विराम इत्यादि' (नवव्यक्तियों की विदेशी भूमि-प्रदान द्वारा विवेकानन्दमुखात् प्रयोग (विदेशीय बर्म-प्रदान), १९३२ की विवेक में। हाल ही में प्रकाशित हुई है, अर्थात् वे ईसाई-भक्तप्रचारकों के बर्मों के लिए एक एक दृष्टि क्षेत्र का ही शक्ति प्राप्त कर रहे हैं।

इस धर्मधन की भावना

इस प्रकार तुलनात्मक धर्म का उद्देश्य यह प्रदर्शित करना नहीं है कि कोई एक धर्म या धर्म धर्म धार्मिक भावना की उच्चतम धर्मधन है। कारण यह है कि जब मिलत-जुलते तब प्रायः धर्म धर्मों के शीर्षों में भी दिखाई पड़ते हैं। तब किसी भी धर्म को परम या सर्वोच्च बताना कठिन है। परमवादी दावे का बस इस प्रकृतित विश्वास पर आधारित होता है कि उसके अपने विशिष्ट कट्टर सिद्धांतों और गाथाएँ प्रथम या प्रथम हैं, परन्तु तुलनात्मक धर्म बताता है कि यह चारणा गमल है। तुलनात्मक धर्म के मूल नेताओं में हम धर्म को व्यवहार करने योग्य धर्म की विभाजना थी। जो लोग हमारे धर्म पर विश्वास नहीं करते उनके शीर्षों में निजामी धर्म प्रार्थनाओं को परमात्मा दुकरा नहीं देता। ईश्वरमूलक में इस बात पर बहुत धीरे धिया है। वे कहते हैं "मिरा मन है कि संसार के महान धर्मों में से प्रत्येक में एक ईश्वरीय तत्व विद्यमान है। मैं समझता हूँ कि उनको जीवन की कारस्थानी बताना जबकि वे सब ईश्वर के बनाए हुए हैं ईश्वर की मित्रा करना है। धीरे मेरा मन है कि ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ परमात्मा में विश्वास उस ईश्वरीय स्फुरणा के बिना हो गया हो जो मनुष्य में कार्य कर रही ईश्वरीय धारणा का प्रभाव है। यदि मैं इससे विमल विश्वास करूँ यदि मैं अपनी गंभीरतम सहजवृत्ति के विरुद्ध अपने-आपको यह मानने के लिए विवश करूँ कि केवल ईश्वरों की प्रार्थनाएँ ही ऐसी हैं जिन्हें कि परमात्मा समझ सकता है तो मैं अपने-आपको ईसाई नहीं कह सकता। सब धर्म केवल हकलाने (स्पष्ट भाषण) जैय हैं। हमारा धर्म धर्म भी उठना ही ऐसा है जितना कि शिष्टाचारों का धर्म। उन सबका धर्म समझना होना धीरे मुझे इसमें मग्नेह नहीं है कि उनमें जाड़ या भी नुटियाँ क्यों न हों उनका धर्म समझ ही जाणिया।" डॉक्टर एस्टलिन कार्लोस्टर का भी

दृष्टिकोण ऐसा ही था "बहु यह स्वीकार करेगा कि बहु स्वयं इस विश्वास में भाग नहीं ले सकता कि धर्म का कोई भी एक स्वरूप परम है। बहु इस बात को स्पष्ट कर देगा कि उसके अपने धर्म्यमन से उसे यह निश्चय हो गया है कि यह याद रखना सामंजस्य है कि ईसाइयत ही ईश्वरवाच (भास्तिरुता) का एकमात्र रूप या प्रतीति सन्त का एकमात्र वाहन नहीं है जिसे कि इतिहास ने हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है और यह भी कि उस यह प्रतीत नहीं होता कि अब तक बंध धर्मिणों ईसाईधर्म को माननीय प्रकृति के भावनाम और सामान्य माननीय अनुभव स धर्म-बन्धन रखने को उचित सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। अब हम अपने मन में इस प्रकार खुला रखें केवल तभी हम एक-दूसरे के विश्वासों को समझ सकते हैं—अब तक हम इसे अपने सामंजस्य को एक धर्म न बन से जब तक यह केवल एक निष्प्राण बौद्धिक योजना-मान रहेगी। अब हम किसी धर्म्य धर्म के अनुयायी को समझना चाहते हैं, तो हमें उस प्रमाण का अनुभव करना होगा जिसने कि उसे धर्मित कर लिया है।

इस क्रमिक और इस विश्वविद्यालय के विद्यार्थी सर्वप्रथम और सबसे बढ़कर सत्य के धर्म्यक हैं। क्रमिक कोई पिरनावर नहीं है। यह किन्हीं विशेषाधिकार के संरक्षण के लिए धर्मका किसी एक धार्मिक विश्वास न प्रति अनुकूलता माने के लिए नहीं है। इसका मुख्य इच्छा स्वतन्त्रता और ईमानदारी के बाधाकरण में रहकर सत्य की खोज करना है। यहाँ तक कि धर्म जैसे विषय में भी जिसमें कि धर्मिक बहुत जल्दी जाय उठता है, विभिन्न धर्म एक ही उद्देश्य की खोज में बढ़नेवाले साधकों जैसे हैं। यदि प्रमाण की आवश्यकता हो तो धर्मका मुझे निमित्त करना ही इस बात का प्रमाण है कि कम से कम यह क्रमिक धर्मिकतम स्वतन्त्रता और सत्य से बढ़कर किसी धर्म्य धर्म्य को स्वीकार नहीं करता। यह किन्हीं प्रचाररत्मक प्रचारण के लिए नहीं बना और न यह ही कहा जा सकता है कि यह मानना

१ वेदरक्षण शोधक ई. वारनेयर—मेनोरिकल द. जून (१९२१), पृ. ११०-

बीजात यद्यो की उन्मत्तम नितापो है यद्य उन्मत्त है।

इस मन्त्रार्थ के समर्थन में कुछ बोड़े-से ऐतिहासिक प्रसंग भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं। वैदिक विचारकों ने योपना की थी "मनुष्य उस इन्द्र मित्र बरुण धमि कहकर पुकारते हैं ऋषि उसके धनेक नाम बताते हैं जोकि बस्तुतः एक है। या फिर 'ऋषि जोध अपने मंत्रों में उसे धनेक रूप देते हैं जो वेदम एक है।" भगवद्गीता के रचयिता ने ब्रह्म (ब्रह्म) के मूल से कहसबाया है 'हे कुन्ती के पुत्र जो लोग धर्म्य देवताओं की पूजा करते हैं और यथापूर्वक उन्हें भेंट चढ़ाते हैं, वे भी बरगुण मुझे ही भेंट चढ़ाते हैं यद्यपि वह भेंट विधिपूर्वक नहीं होती।' बौद्ध लोगों का धारण भी ऐसी ही ध्वनि पर है। मानवीय सम्मता के इतिहास के इतने प्रारम्भिक काल में धर्मोक्त का सिन्धामेष सचमुच ध्यान देने योग्य है। "राजा प्रियदर्शी सब सम्प्रदायों, साधुओं और गृहस्थों का धारण करते हैं। वे उपहारों द्वारा तथा विभिन्न प्रकार की इनामों द्वारा उनका सम्मान करते हैं। क्योंकि जो व्यक्ति केवल अपने सम्प्रदाय से पूर्व धनुराग के कारण अन्य सम्प्रदायों की निन्दा करते हुए अपने सम्प्रदाय का धारण करता है, जिससे उसके अपने सम्प्रदाय का मीरव बड़े बड़े बस्तुतः ऐसे धारण द्वारा स्वयं अपने सम्प्रदाय पर कुट्टराघात कर रहा होता है।" इसी प्रकार धीक विचारकों ने लीगोस (पण्डित) के सिद्धान्त का इस रूप में विचार किया था कि वह मनुष्य और प्रकृति में कार्यगीम देवीय तर्क है। धर्म की सार्वभौमता का मूल धर्मवर्ती लीगोस को बताया गया है। ईसाईधर्म के प्रारम्भिक दिनों में इस धारणा ने बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। धर्म 'मनुष्यों की प्रत्येक जाति में धन्दर स्थापित सोमोम के बीज की उपज है। अस्तित्व दि मार्टर (ईस्वी सन् १५) की दृष्टि में वे सोम जो लीगोम के साथ निवास करते थे ईसा से पहले विद्यमान ईसाई के हानाकि उस युग के धूनाधारवारी (कॅथामॅटमिस्ट) सोम मुकरात और हेराथनीटस जै

दार्शनिकों का नास्तिक कहते थे। हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि ईसा परमात्मा और मागोस का विषय में कि सारी मानव-जाति हिस्सा लेती रही है प्रथम पुरुष या धीरे धीरे सोप सुन्दर के प्रमुख जीवन यापन करते थे वे ईसाई थे मने ही उनको नास्तिक क्यों न माना जाता रहा हो। इस प्रकार के सोप बुद्धिमियों में सुकरात धीरे हेराक्लीटस से धीरे सन जीसस प्रथम सोप भी थे।" अस्तित्व की दृष्टि में काव्य या दर्शन की धर्म-विज्ञान व्यवस्था कानून की सब अवस्थियां सोपोस के धार्मिक धीरे विज्ञान से ही निकली हैं और वह ईमानदारी के साथ कह सकता था कि "किन्हीं भी मनुष्यों ने जो कुछ भी बातें टीक-टीक कही हैं वे हम ईसाइयों की सम्पत्ति हैं।" मानवीय विचार की सब सुन्दरतम कृतियां सोपोस में जाल लेन का परिणाम हैं। श्रेष्ठ पीढ़ी कहते हैं 'मैं सबसुख मुझे यह बात समझने में आती है कि परमात्मा व्यक्तियों का धारण नहीं करता अपितु प्रत्येक रा में जो भी कोई उत्पन्न करता है धीरे ईमानदारी से काम करता है वह सब स्वीकार्य होता है।' प्रथम महान ईसाईधर्म प्रचारक ने बोधना की थी कि परमात्मा ने अपने-आपको किसी भी काल में ऐसा नहीं रखा कि उत्पन्न दर्शन न होता रहा हो। जब रोमन साम्राज्य ने अपने प्रभाव में पश्चिम एशिया उत्तरी अफ्रीका धीरे बर्षिणी तथा मध्य यूरोप के विभिन्न जाति के लोगों को पास-पास सा रखा तब उसके विचारकों ने परमात्मा को एकता को उस एक सामान्य बड़ी के रूप में धार्मिकृत किया जो विभिन्न संप्रदाय-पद्धतियों को परस्पर बांधे हुए थी। सीरिया के पूरेबिया (लगभग सन् २९०-३४ ईस्वी) ने एक दमन सिखा जिसका नाम 'प्रिप्रीयन फॉर द गॉस्पेल' (मुख्यमाचार के लिए टीपारी) था जिसे डॉक्टर एस्टलिन कारपेक्टर ने 'ईसाईधर्म-विज्ञान से निराल तुलनात्मक बर्म प' कहता महान प्रथम' बताया है।' सन् ३३० ईस्वी के बादपास मीडोर के मैक्सीमस ने प्रालस्टाइल को सिखा था "उत्तम परमात्मा एक।

१ कारपेक्टर: क्वीरेटिव रिविजन (१९२६), पृष्ठ २२।

२ पृष्ठ: ३५ ३६।

घोर उसकी कोई प्राकृतिक सन्नाह नहीं है। वह मानो परमात्मा और सबका सक्तिगामी पिता है। उन दैवीय शक्तियों की जो उस परमात्मा द्वारा बनाए हुए संहार में व्याप्त हैं हम अनेक नामों से पूजा करते हैं क्योंकि हम सब उस परमात्मा के सच्चे नाम को नहीं जानते। इस प्रकार होता यह है कि जबकि हम एक-दूसरे से भिन्न प्रार्थनाओं के रूप में उस दिव्य अस्तित्व के कुछ अर्थों तक पृथक-पृथक पहुंचते हैं तब हम बस्तुतः उसके पुत्रापी के रूप में दिखाई पड़ते हैं जिसमें कि ये सब अर्थ मिसकर एक हो गए हैं।”^१

मायस्टाइन तब से, जिसे बट्टर मिडलैंडवासी ईसाइयत का मुख्य समर्थक माना जाता है अपनी अंतिम पुस्तक रिट्टेक्टैण्ड्स (प्रत्यास्थान) में कहा है “वही बस्तु जो अब ईसाईयत कहलाती है प्राचीन लोगों में विद्यमान थी और जब से मानव-जाति का प्रारम्भ हुआ है तब से लेकर ईसा के गरीर रूप में अवतरित होने तक कभी भी समाप्त नहीं हुई। उसके बाद वह सच्चा धर्म जोकि पहले से ही विद्यमान था ईसाईयत कहलाने लगा।”^२

तन्नाद अन्तर में जिसे ईश्वरनुसार के मतानुसार वह पहला व्यक्ति समझा जा सकता है जिसने कि संहार के धर्मों के सुमनाम्नक अध्ययन का साहसपूर्वक प्रारम्भ किया था इस्लाम की सर्वोच्चता में अपना विश्वास त्याग दिया था और यह घोषणा की थी कि “सब धर्मों में और मिठाकारी विचारधाराओं में विशेषगरीब पुरुषों विद्यमान है और सब राष्ट्रों में अमरवादी शक्तियों नामे लोग पाए जाते हैं। अम्बर म बरप को ऐसी स्तुतियाँ मिलती है जिनसे नामा (ईसाई-बर्मों) और ईसाई शक्ति-साक्षिणी की भाषा स्मरण हो जाती है। प्राचीन बर्बोमोन या मिय में या हमारे रोम और बनारस में ईश्वर के भक्त करमा के मिहामन के निरट घाक्राधा और स्तुति के करने पाप की स्वीकृति और विनय के उन्हीं शब्दों के माप पहुंचते हैं। तात्त्विक

१ कार्पेन्टर कन्वैरेटिव रिजिजन पृष्ठ १२।

२ १३।

३ ‘रिट्टेक्टैण्ड्स ट द सार्स अफ रिजिजन (११ १) अध्याय १ का अन्तिम पृष्ठ ३८।

दृष्टि से सामाजिक धार्मिक चेतना में परिवर्तन बहुत कम हुआ है। या धपने लिए अभिव्यक्ति के निमित्त रूपे निकास लती है और इन परिवर्तन का कारण ऐतिहासिक परिस्थितियाँ होती हैं। विवेकशील दृष्टि से कि एकता स्थापित करनेवासी वस्तुएं निम्नतर करनेवासी वस्तुओं की अपेक्षा अधिक महान है।

यदि उचित रीति से सम्पन्न किया जाए, तो तुलनात्मक धर्म परमात्मा की सर्वांगीणता में हमारे विश्वास और मानव-जाति के प्रति हमारे धार को बढ़ाता है। यह हमारे धर्म केवल सहायता की मनोवृत्ति को नहीं बताता जिसमें कि सबसे बड़प्पन की भावना निहित है न वह केवल धरम देनेवाली कक्षा को न सोकोतर उदारता को ही बताता है अपि सुखे धार और मूढाकन की भावना उत्पन्न करता है।^१ हमें दैवीय वस्तुओं के प्रत्येक सन्ने और ईशानधार सिद्धक में चाहे वह प्राचीन हो या आधुनिक इस बात को खोजने का प्रयास करना चाहिए कि 'उसके धर्म को भावना थी वह किस बात की ओरक थी।'^२ उचित रीति से पुरातत्व वेत्ता प्राचीन काल की वस्तुओं के संज्ञानाम में विस्तृत परीत के सुरक्षित प्रबन्धों का सम्पन्न किया करते हैं, उक्त रीतिसे उत्तार के धर्मों का सम्पन्न करने से कोई लाभ नहीं है। कारण यह है कि विभिन्न धर्म मानवीय मन

१. उन पैरान्तर ने वह क्या तो वे जाने बरन से की कुछ अपने पदुष लर कि 'संभवतः सामाजिक दीर्घकम को छोड़कर अन्य कोई न्य धर्म उत्तार के प्रसुर धर्मों की विन्तु तुलना के विचार का उत्पन्न न करता। 'केवल ईश्वरधर्म ही वेत्ता है किन्ने किनी विविध जाति के धर्म के रूप में मही, किन्ती करक की र्ण (सकलप्य ह्यप कुनी र्ण) जाति के धर्म के रूप में मही, अकिन्तु मानवता के धर्म के रूप में मानव-जाति के इतिहास को अपने इतिहास के रूप में मानवकन करक संसार की उन जातियों के विकास में दैवीय धर्म और वेम के किन्ती की प्रेरण करना और बहि सम्भव हो तो धार्मिक निरन्तर के निरन्तर और अनिन्तुलन रूपों को भी सौदाय की कलरत्नगी व समझकर वेत्ती वस्तु समझना सिद्धय है, ये दैवीय धर्म-धर्मों की लूक है।'— इन्डो-लतल इ इ इतिहास की विविध र्ण २१।

की उम जीवन को पान की महत्वाकांक्षाओं के प्रतिनिधि हैं जो इस संसार का नहीं है। उम महत्वाकांक्षाओं के जो केवल स्वप्न नहीं अपितु मनुष्यों के जीवन की सबसे अधिक शक्तिशाली वास्तविकताएं हैं। तब यदि विभिन्न धर्मों में धार्मिकधर्मनक समानताएं हैं तो वे या तो इस कारण हो सकती हैं कि उलका मूस लोग एक ही या या इस तथ्य के कारण कि जब मानवीय बुद्धि के सम्मुख एक जैसे तत्व उपस्थित हुए, तो उद्यने सब जगह मिलते मिलते निष्कर्ष निकाले और एक-सी सहज वृत्तियों से प्रेरित होकर मिलती जुलती उपासना-व्यवस्था बना जाती।

६

तुलनात्मक धर्म की समस्याएं

तुलनात्मक धर्म के विषय के अन्तर्गत घनेक स्पष्टतया पृथक समस्याएं आती हैं। सामान्यतया धर्मों के उद्गमों के प्रश्न पर जो जोर दिया जाता है उसका कारण तुलनात्मक धर्म के प्रारम्भ के दिनों में विद्यमान परिस्थितियां हैं। धर्म्य धर्मों का अध्ययन (उत्पत्ति-विज्ञान की धर्मशास्त्रीय प्राचीन बस्तुओं से सम्बन्धित) इस शक्ति के साथ किया जाता है कि क्या वे मृतकों की पूजा से प्रारम्भ हुए, धर्मशास्त्रिकारी छत्तियों के मय से और उन्हें दूर रखने की इच्छा से उत्पन्न हुए। हम ऐसे काल में पहुंच जाते हैं जहाँ प्रमाणों का स्थान बह्यना से जाती है। मैं इन अध्ययनों के महत्त्व को कम करके नहीं बताता चाहता परन्तु इस प्रश्न में मेरा सम्बन्ध मुख्यतया इन प्रश्नों से नहीं है।

फिर विभिन्न धर्मों के इतिहास के सम्बन्ध में भी समस्याएं हैं। कुछ पदुतापुर्ण विद्वान्ओं में यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि अरबुत्तन बाद का अहुरमरदा और धार्धर एक ही हैं और यह कि अबाहम धारोन और धार्धर 'एक ही तत्व के अलग-अलग रूप हैं'। सर जम्स केजर ने

ऐडोनिस की हस्तकथा की जैसी कि यह बेबीलोनिया में विद्यमान भी और जिसने उसे यूनान में छाठवीं शताब्दी ईस्वीपूर्व में मिया या तुलना छीत्रिया में प्रचलित ऐडिटस की हस्तकथा और मिस्र में प्रचलित थोसीरिस की इससे मिलती-जुलती पुराणकथाओं के साथ की है।^१ बेल्सग ने यह कथा रूढ़िवादी और असाधारण चतुराई और किसाट कल्पनाओं द्वारा इसका समर्थन किया कि मूसा ईसा और पॉल बेबीलोनिया के प्राचीन महाकाव्य के पौराणिक नायक गिस्वामेस के रूपान्तर-मात्र हैं। देवताओं की मूल्य और उनके फिर जीवित हो उठने में विश्वास मिस्र बेबीलोनिया फेनी सिया और सीरिया में पाया जाता है और इस सम्बन्ध में बहुत काफ़ी जानकारी 'द बेल्सग बॉय' के एक निदान जग में जिसका शीर्षक 'द डाइग पॉइ (मिथमाज ईस्वर) है मिल सकती है। प्रोफेसर किरसाप मक के 'पॉस रॉनियर एपिग्राफ' (पॉल के प्रारम्भिक धर्मपत्र) के सम्बन्ध में मिली अपनी पुस्तक में आदिम ईसाईयत का प्रारम्भिक रोमन साम्राज्य के रहस्यपूर्ण धर्मों के साथ सम्बन्ध स्पष्ट किया है। कुछ कृष्ण और ईसा के जन्म की कथाओं में कुछ ऐसी आश्चर्यजनक समानता है जो इस बात का संकेत करती है कि ये एक-दूसरे से सी गए हैं। भक्तवत्सीता और तुलनाचार्यों (गॉस्पेल) की शिक्षाओं में पाई जानेवाली समानताओं के कारण बहुतसे लोग यह सोचने लगे हैं कि कृष्ण और क्राइस्ट (ईसा) एक ही थे। बौद्धधर्म और ईसाइयत इन दो धर्मों के स्थापकों के जीवनो उनके धर्मग्रन्थों और उनकी नैतिक शिक्षाओं की तुलना निस्सन्देह एक आनन्दपूर्ण अध्ययन है। शिक्षाओं की पूर्वज-परम्परा का अध्ययन तुलनात्मक धर्म की एक बहुत ही उर्वर शाखा है।

किसी भी एक धर्मवाचक कल्पना का मूल्य कुछ भी क्यों न हो परन्तु जब तुलनात्मक पद्धति का उपयोग मूल्य-बुद्धि और संयम के साथ, सहाय्यपुष्टि और अर्थिके-साथ किया जाएगा तो उससे हमें विभिन्न धर्मों की समान पृष्ठभूमि को, और उनकी मिली-जुली रचना को समझने में

१ ऐडोनिस ऐडिटस और थोसीरिस (१६ ४) पर उनकी पुस्तक देखिए।

सहायता मिलेगी और हमें भयेगा कि मानव-स्वभाव जितना विविधरूप और प्रचुरतापूर्ण है उतना ही एकतापूर्ण भी है। हम किसी को बर्षों को बनकर उनकी विस्थापना के प्रत्येक कारणों और मोटे-मोटे धर्मों का अध्ययन कर सकते हैं या उनके विशिष्ट अनुभवों जैसे रहस्यवाद तपस्व्याचार बलिदान (यज्ञ) आर्चना और धर्मतार इत्यादि की तुलना कर सकते हैं। इस प्रकार की जांच से हमारे लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण परिणाम निकाल पाना सम्भव हो जाएगा। हम इस बात का निश्चय कर सकते हैं कि किसी धर्म के कौनसे तत्व उसके धर्म हैं और कौनसे उसने दूसरों से उधार लिए हैं और किससे उधार लिए हैं और उनकी समानताएं केबल ऊपरी हैं भ्रमवा उनकी जड़ें महदाई तक गई हुई हैं। उनमें परस्पर सहमतियां या समानताएं ऐतिहासिक सम्पर्क से उत्पन्न होनेवाली प्रेरणाओं के फलस्वरूप हैं जैसेबादकसा एक ही प्रकार के अनुभव के कारण उत्पन्न हुई हैं। विचार की किन्तु पास्तियों में उनका रूप मजबूत है और वे किन्तु अनुभूतियों को स्थगित करते हैं? फिर इसका क्या कारण है कि एक ही जाति से सम्बन्ध रखनेवाले लोग धर्म-धर्म के मानते हैं? जसबायु, धर्म्य लोगों के साथ सम्पर्क और परिवर्धन के साथ समय का उन पर क्या प्रभार पड़ा है? तुलनात्मक धर्म इन समानान्तरताओं और समानताओं के अध्ययन द्वारा हमारी दृष्टि को विस्तृत करती है। जब हम धर्म्य धर्मों की दृष्टिकोणों और पैदाकारों का आलोचना करते हैं तो हमें अपने धर्म के प्रति भी वैसी ही विवेकपूर्ण आलोचना की मनोकृति अपनाती चाहिए।

यदि हम परिवर्तन के उन धानुजमिक बर्षों और उन लोपानों की रोज करें जिनमें से कोई एक धर्म मुजरा है यदि हम किसी भी एक धर्म के बाह्य विकास उसकी पूजा की पद्धतियों और उसके सिद्धान्तों की दृष्ट-

१. कुछ धानुजमिक धर्म-विज्ञानिक इन दृष्टिकोण को अपनाये के लिए उनसे कहा जाता है कि धनुस्वरूप धनुष और प्रकृत की धरिक धरती धनुष के कारण उत्पन्न हो जाती है। के प्रत्येक धरती धनुष के धर्म में धर्म है।

धूमि तक पहुंचना चाहें तो हमें उन कारकों के सम्बन्ध में उन घोर अधिक कठिन प्रश्नों का सामना करना होगा जिन्होंने इन कार्यों को रूप प्रदान किया और इन विश्वासों को गढ़ा। य हमें समस्याओं के तीसरे समूह तक ले जाते हैं जो मानवविज्ञानीय या ऐतिहासिक समस्याओं से वृक्ष हैं। नामस- ये दार्शनिक समस्याएं हैं। यहाँ हमारे सामने मुख्य घोर बीजना के प्रश्न उपस्थित होते हैं। तुलनात्मक धर्म द्वारा एकत्र किए गए तथ्यों को प्रबुद्ध विचार की वास्तविकता प्रकट करने के सम्बन्ध में किस सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है? यदि हम पूजा और विश्वास के इन रूपों को न मितें जोकि हमें उन धार्मिक और बुभन्तू या ज्ञानाबरोदा जातियों में दिखाई पड़ते हैं, जिनके अपने कोई ऐसे धर्मग्रन्थ या पवित्र विषय या ऐसे यन्त्र और प्रार्थनाएं तक नहीं हैं, जो हर पीढ़ी द्वारा सबकी पीढ़ी को छोपी जाती रही हों तो ऐतिहासिक धर्म केवल छात या घाठ ही रह जाते हैं। सामी (सैमिटिक) जातिवा के तीन धर्म हैं यहुदी ईसाई और इस्लाम धर्म। हिन्दुधर्म का-जिमकी बोद्ध, जैन और सिद्ध धर्म आदि अनेक शाखाएं हैं-और अरबुस्वकार का विक्रम धार्मिकजातियों ने किया। इनके शास्त्रों में अनेकपुधियस और साप्रोले के बनों को मिला लिया जाए, तो बस ये ही मानव-जाति के पवित्र धर्म हैं। यदि मैं इसके लिए सज्जम भी होता तो भी इस भाषण में इन धर्मों के उच्चतर विचारों के सम्बन्ध में बर्षा कर पाना सम्भव नहीं था। मेरा प्रयत्न यह होगा कि आपके साथ मनुष्य जाति के धार्मिक अनुभव की पूर्व-धारणाओं के सम्बन्ध में उद्भावनापूर्वक वैसे कि बेंट पॉल ने कहा है साध्यात्मिक वस्तुओं की साध्यात्मिक अनुभवों से तुलना करते हुए उन रूप में विचार किया जाए, वैसे कि यह अपने एक या दो प्रतिबिम्बितक रूपों में विद्यमान है। 'धार्मिक अनुभव के रूप में' हमारा यह वर्तम्य है कि हम जहाँ कहीं भी मान और सम्झाई को पाएँ वहीं उसे इस विश्वास के माप पहुंचाने और उनमें मान्य के कि या कुछ भी स्वयं और विक्रम है वह सब परमात्मा से प्रभूत है।

प्रतिपादन को पद्धति

एक बात यह है कि तुमनात्मक धर्म ने सत्य और मिथ्या धर्मों के बीच सामान्यतया किए जानेवाले भेद को घमास्य बना दिया है। गैर-ईसाई धर्मों की रोमन कैथोलिकों और एंग्लिकन सेलों द्वारा व्यापक रूप से 'बिस्नुम मिथ्या' कहकर ही जानेवाली मिथ्या बेहूरा मगने लगती है। सामान्यतया सत्य और मिथ्या का अन्तर 'मेरे' और 'तेरे' के साथ एकत्र होता है। यह बात यहूदी और जेष्टाइन (गैर-यहूदी) हिन्दू और म्नेष्य, यूनानी और बर्बर (असभ्य) ईसाई और बिपरीत भुमममान और काफिर में किए जानेवाले भेद पर लागू होती है। हमारे प्रयोजन के लिए यह डि-विभाजन धर्म्य है।

अपीरपय (ईस्वरचित) धर्म और प्राकृतिक धर्म के मध्य वैपम्य यद्यपि सत्य और मिथ्या के मध्य वैपम्य के तुल्य नहीं है, फिर भी उसका प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि जैसे उसमें यह विद्यमान वैपम्य निहित हो। ईस्वरचित धर्म को एक विनोपाधिभारपूर्व स्थिति प्राप्त है। ईस्वर द्वारा उद्घाटन एक सार्वभौम है। उसपर किसी एक स्वान-विशेष का ही दावा नहीं है। जब हम यह नहीं कह सकते कि सत्य ने अपना निवास स्वान संसार के केवल किसी एक माय में ही बना रखा है। जब हम इस बात को अपने पूर्वजों को छोड़ा नहीं अपितु स्पष्टरूप में अनुभव कर पान में समर्थ है कि परमात्मा ने मनुष्यों को अपना ज्ञान एक-दूसरे से भिन्न करने का यो करवाया है। जब हम इस बात का नहीं मानते कि जो कुछ भी अच्छा और सत्य और मूल्यवान है वह सब किसी एक ही धर्म में पाया जाता है और जिन लोगों को उस धर्म को अपना ज्ञान का मुख्यधर्म नहीं मिला उनके भाग्य में अज्ञान अज्ञाना मिली है। हमारे मुख में ऐसी धार्मिक रम-तारना बहुत अजीब सुनाई पड़ेगी। हमारे सम्मुख परमात्मा का एक ही धार्मिक उच्च और धार्मिक सत्य स्वरूप विद्यमान है।

सुमि तक पहुंचना चाहिए तो हमें उन कारणों के सम्बन्ध में उन धीर पब्लिक कठिन प्रश्नों का सामना करना होगा जिन्होंने इन कार्यों को रूप प्रदान किया और इन विश्वासों को गढ़ा। य हमें समस्याओं के तीसरे समूह तक ले जाते हैं जो मानव-विकास या ऐतिहासिक समस्याओं से पृथक् हैं। नामसः ये दार्शनिक समस्याएं हैं। यहाँ हमारे सामने मुख्य धीर बैधता के प्रश्न उपस्थित होते हैं। तुलनात्मक धर्म द्वारा एकत्र किए गए तथ्यों को प्रबुद्ध विचार की वास्तविकता प्रकट करने के सम्बन्ध में किस सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है? यदि हम पूजा और विश्वास के उन रूपों को न गिनें जो कि हमें उन प्राथमिक धीर बुद्धि या खानाबदोश जादियों में दिखाई पड़ते हैं जिनके अपने कोई ऐसे धर्मग्रन्थ या पवित्र नियम या ऐसे मन्त्र और प्रार्थनाएं तक नहीं हैं, जो हर पीढ़ी द्वारा अपनी पीढ़ी को सीपी जाती रही हों तो ऐतिहासिक धर्म केवल सात या आठ ही रह जाते हैं। सामी (सेमिटिक) जातियों के तीन धर्म हैं यहुदी ईसाई और इस्लाम धर्म। हिन्दूधर्म का—जिसकी बौद्ध, जैन और सिख धर्म प्रायः अपने-आपने हैं—और बरबुद्धवाद का विकास प्रायः जातियों ने किया। इनके साथ-साथ कनकपूषियस और लाओले के धर्मों को भिन्ना भिन्ना जाए, तो बस ये ही मानव-जाति के जीवित धर्म हैं। यदि मैं इसके लिए सक्षम भी होता तो भी इस भाषण में इन धर्मों के उच्चतर विचारों के सम्बन्ध में बर्षा कर पाना सम्भव नहीं था। मेरा प्रयत्न यह होना कि आपके साथ मनुष्य-जाति के धार्मिक धनुष की पूर्व-कारणों के सम्बन्ध में सद्भावनापूर्वक जैसा कि सेट पॉथ ने कहा है 'प्राध्यात्मिक वस्तुओं की प्राध्यात्मिक वस्तुओं से' तुलना करते हुए उस रूप में विचार किया जाए, जैसा कि वह अपने एक या दो प्रतिबिम्बारमक रूपों में विद्यमान है।¹ धार्मिक धनुष के रूप में हमारा यह कर्तव्य है कि हम जहाँ कहीं भी मान्य और निष्ठाई को पाएँ वहीं उसे इस विश्वास के साथ पहचानें और उसमें मान्य करें कि जो कुछ भी शरीर और दिव्य है वह सब परमात्मा से प्रकृत है।

७

प्रतिपादन की पद्धति

एक बात यह है कि तुमनात्मक धर्म ने सत्य धीरे-धीरे मिथ्या धर्मों के बीच सामान्यतया किए जानेवाले भेद को धमाल्य बना दिया है। गैर-ईसाई धर्मों की रोमन कैथोलिकों धीरे-धीरे ऐंग्लिकन सबों द्वारा व्यापक रूप से 'बिस्कुस मिथ्या' कहकर ही जानेवाली गिनती बहूतया लमने समती है। सामान्यतया सत्य धीरे-धीरे मिथ्या का धन्तर मेरे' धीरे-धीरे के साथ एक रूप होता है। यह बात यहूदी धीरे-धीरे जेसाइम (गैर-यहूदी) हिन्दू धीरे-धीरे श्मेषु, यूनानी धीरे-धीरे बर्बर (धसम्प) ईसाई धीरे-धीरे बिबर्मी मुसलमान धीरे-धीरे काफिर में किए जानेवाले भेद पर लागू होती है। हमारे प्रयोजन के लिए यह द्वि-विभाजन धर्म्य है।

धर्मीय (ईसाईधर्म) धर्म धीरे-धीरे प्राकृतिक धर्म के मध्य वैपम्य धर्म्य सत्य धीरे-धीरे मिथ्या के मध्य वैपम्य के तुल्य नहीं है। फिर भी उसका प्रयोग हम प्रकार किया जाता है कि जैसे उसमें यह पिछला वैपम्य निहित हो। ईसाईधर्म को एक बिदेसाधिकारधर्म स्मिति प्राप्त है। ईसाई धर्म उद्घाटन एक सार्वभौम देन है। उसपर किसी एक स्थान-विशेष का ही दावा नहीं है। जब हम यह नहीं कह सकते कि सत्य में धर्मना विधाम स्थान संसार के केवल किसी एक भाग में ही बना रहा है। जब हम इस बात को धर्मने पूर्वर्षों की धर्मना नहीं धर्मिक स्पष्टरूप में धनुमब कर पाने में धर्मर्ष है कि परमात्मा ने कनुष्यों को धर्मना ज्ञान उप-धुमने से भिन्न धर्मिक रूपों में करवाया है। जब हम इस बात का नहीं मान लेते कि जो कुछ भी धर्मना धीरे-धीरे सत्य धीरे-धीरे मुसलमान है वह नव-धर्मों एक ही धर्म में पाया जाता है धीरे-धीरे धर्मना को उस धर्म की धर्मना का मुदधमर नहीं मिना उधके भाग्य में धर्मना धर्मना मिती है। हमारा धर्म में ऐसी धर्मिक रण-धर्मना बहुत धर्मना धुनाई धर्मना। हमारे धर्मना परमात्मा का एक ही धर्मिक उधध धीरे-धीरे धर्मिक सत्य स्वल्प बिधमान है।

इसलिए धर्मों के सम्बन्ध में प्रश्न सत्यता या निष्पत्त्य का नहीं यकिु जीवन्त या मृत्यु का है। देखना यह है कि कोई धर्म एक निष्पत्त्य कुतूहल मान है यावदा एक बीबी-बागती वस्तु है। प्रत्येक जीवित धर्म का अपनी जाति के प्राण्यारिभक सिध्दान्त में अपना नाम होता है। हमारे अनेक धार्मिक विरोधाभास या अर्थपठिया धीर विमूढ़ताएं हमारे सिध्दान्त की संकुचितता के कारण हैं। अपनी सङ्कल्पता को विस्तृत करके हम अपने विचार को अपने पुन के संकीर्ण विचारों से ऊपर उठ्य लेते हैं। हम सबको गेटे का यह विरोधाभास नहीं जाति मान्य है "ओ केवल एक माया जानता है बहु वस्तुय कोई माया नहीं जानता। नकि ने पूछा या "बहु इप्सेड के विषय में क्या जानता है ओ केवल इप्सेड के ही विषय में जानता है?" ओ बात भाषा धीर इतिहास के विषय में सत्य है बहु धर्मों के विषय में भी सत्य है। ह्य स्वयं अपने धर्म को सब तक नहीं समझ सकते अब तक कि उसकी अर्थ कितनी एक या अनेक धर्मों के साथ तुलना करके न देखें। अन्य धर्मों का बुद्धिमत्तापूर्वक तथा सावत्पूर्वक अध्ययन करने से हमें उनकी परम्पराओं के विषय में धीर हमारी अपनी परम्पराओं के विषय में एक नया अर्थ बोधन धीर नुस्वांकन प्राप्त होता है। ओ नी वस्तु विचारों की समस्वरता की इस बुद्धि में सहायक है बहु प्रासाहन देने योग्य है। तुलनात्मक धर्म उन महत्त्वपूर्ण उपकरणों में से एक है जिनके द्वारा मानव-जाति के प्राण्यारिभक विकास की ऐतिहासिक कैतना उपलब्ध की जा सकती है।

किर, भारत का डेटेडिटेन ने साथ बहुत अनिष्ट सम्बन्ध है धीर यदि इस अर्थन को धीतिक सम्बन्धों की अपना धार्मिक स्वाधी बनाना हो तो भारत के धर्मों के सम्बन्ध में धीर अधिक अर्थबोधन बहुत आवश्यक है। इस देश में कुछ विचारकों—स्वर्गीय नाईं हास्डेन धीर प्रिंसिपल मैकस—को इस आवश्यकता का ज्ञान है। नाईं हास्डेन ने अपनी मृत्यु के कुछ अन्ताह पहले हिन्दुई धर्मन में प्रकाशित एक लेख 'पूर्व धीर पश्चिम' में 'पारस्परिक समझौते धीर सहानुभूति द्वारा 'भारत पर शासन करना सीतने के नये

काम' पर जोर दिया जा 'जिसके द्वारा वह समस्या काफ़ी हद तक हल हो सकती है जिसको हल कर पाना असम्भव जान पड़ता है क्योंकि हमने उसे असम्भव-सा बना दिया है। प्रिंसिपल बैचलर पूछते हैं क्या वह समय नहीं था गया है, जबकि ईसाईचर्च के नेताओं के लिए इस बात को समझ लेना सामान्य है कि ब्रिटिश राज्य के केषम भारत में ही समयन तीस करोड़ गैर-ईसाई प्रजाजन हैं जिनकी धार्मिक स्वतन्त्रता की भारतीय राज्य करता है और यह कि इसके फलस्वरूप राज्य के मन को धर्म के प्रति अपने कर्तव्यों को उसकी अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से देखना पड़ता है जो ईसाईचर्च के परस्पर विचाररत बलों के विचारों या वस्तुतः ईसाईधर्म के आन्तरिक मतभेदों से ही सम्बन्ध रखनेवाले किन्हीं भी विचारों की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत है? किसी भी धार्मिक अन्तर्राष्ट्रीयता बाद के लिए तुमनात्मक धर्म का अध्ययन अपरिहार्य आधार है। यह हमें सब धर्मों का एक ऐसा आधार प्रदान करता है जिसे परास्त नहीं किया जा सकता। धर्म जबकि धार्मिक विचारधारा अपने विकास में उच्च बिन्दु तक पहुँच गई है जिसे कि चौकानेवाले लोग सफ़ट की बेसा कहते हैं यह तुमनात्मक धर्म अनिवार्य वस्तु है।

धर्म में पूर्व और पश्चिम

१

पूर्व और पश्चिम के मध्य सम्पर्क

इस विस्तृत विषय की किसी एक व्याख्यान में यथाचित-सी सीमांसा कर पाना सम्भव है। यहाँ मैं मानव-जाति की दो विगत चारों ओर एशियाई और यूरोपीय के साथ सम्बन्धित पक्क-पक्क दृष्टिकोणों के सम्बन्ध में केवल कुछ प्रमुख बातों का उल्लेख कर सकता हूँ। आजकीय सभ्यता के इतिहास में एशिया और यूरोप दो बड़े पक्षों के प्रतिनिधि हैं। एशिया धार्मिक पक्ष का और यूरोप बौद्धिक पक्ष का। समय-समय पर ये दोनों घाटें मिली हैं जिससे दोनों को नाम हुआ है। पहल-पहल ग्रीस, ज्ञान-विद्या, रोम, भारत के ज्ञान-विद्या-पश्चिम के पाइलागीरम और जेटो जैसे दार्शनिकों को प्रभावित किया। पश्चिमी एशिया पर सिक्न्दर के आक्रमण और ईस्वी सन् से पहले की सभ्यताओं में सोरिया और ईसाई सभ्यता में गए बौद्धधर्म प्रचारकों को द्वितीय सम्पर्क का मुख्य समय माना जा सकता है। यूरोप के एक विद्वाने स हमें पता चलता है कि ईस्वीपूर्व तीसरी सभ्यता के दार्शनिक भाग में एशियाई में मेसूपोटमिया और सिक्न्दरिया में टोलेमी बंध के राजदरबारों में बौद्धधर्म प्रचारक भेजे गए थे। इसी समय के अनुयायियों द्वारा स्पेन तथा भूमध्यसागर के दक्षिणी तट पर आक्रमण इस प्रकार के सम्पर्क का तीसरा प्रयत्न है। इन तीन सम्मितियों का प्रभाव महान यूनानी रोमन ईसाई और धार्मिक सभ्यताओं पर बिना

१. लन्दन में मेरी काउन्सिलमेंबर में १ मार्च १९१३ को दिया गया बोयेर व्याख्यान।

सीमा तक और कित्त रूप में पड़ा इसका निश्चय कर पाना कठिन है। मानवता के मध्य के सम्बन्ध में सबसे आसाजनक तथ्य यह है कि वर्तमान काल में संसार के लोग एक-दूसरे के निकट आ गए हैं। पूर्व और पश्चिम सब विचार का जीवन में एक-दूसरे से पुष्प नहीं रह सकती। अब तक इन लोगों के मध्य जो सम्पर्क सामयिक और धर्मकामीन होते थे अब वे निरन्तर और स्थायी बन गए हैं।

धर्म की आवश्यकता

मानविक संसार की एकता के लिए कोई नया सांस्कृतिक आधार होना चाहिए वास्तविक प्रश्न यह है कि वह प्रायिक और व्यवहारवादी मस्तिष्क द्वारा जोकि इस समय प्रायिक प्रमत्तापूर्ण है, प्रेरित होना चाहिए धर्म की साम्प्रदायिक मन द्वारा। एक ऐसा दार्शनिक जगत जिसमें मानवता आत्मानुसंग काव्युत्पत्तता के सम्बन्ध के रूप में व्यक्त की गई हो मानवीय प्रबल का उचित सक्षय नहीं है। इन्में एक ऐसे साम्प्रदायिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसके अन्तर्गत केवल धर्मशास्त्र और राजनीति का विद्यालय धार्मिकपूर्ण जीवन हो अपितु आत्मा की सुदृढ़ आवश्यकताओं के लिए भी स्थान हो। किसी सम्प्रदाय का वास्तविक स्वरूप उसकी कड़ियों और संस्थाओं से उठना पता नहीं चलता जिसका कि उसके साम्प्रदायिक सूत्रों और मन की सञ्जा से पता चलता है। धर्म सम्प्रदाय का साम्प्रदायिक पक्ष है। मानो वह अपने साम्प्रदायिक संगठन-कपी धर्मों की आत्मा हो। विद्यालय का उपयोग, प्रायिक समझौते, राजनीतिक संस्थाएं संसार को बाह्य रूप से संबद्ध कर सकते हैं, नुरन्तु एक सुदृढ़ और स्थिर एकता के निर्माणकार्यों और प्रायों की सपुत्र किन्तु धर्मशास्त्र कड़ियों की एकता किन्ना जाना चाहिए। मानवीय धर्म के पुनर्निर्माण के कार्य में धर्म द्वारा पुरा किए जानेवाला

ज्ञान-विज्ञान के माप की अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। मानव-व्यक्ति
 शरीर, मने और आत्मा से बना है। इनमें से प्रत्येक को अपने लिए समुचित
 पोषक तत्व चाहिए। शरीर भोजन और व्यायाम द्वारा चला रहता है। मन
 विज्ञान और आत्मोन्नति द्वारा समझा रहता है और आत्मा कला और साहित्य
 द्वारा, दर्शन और धर्म द्वारा प्रकट रहती है। यदि मानवता की आत्मा का
 विकास होना हो तो वह केवल उसकी सुन्दरतम ऊर्जा के प्रयोग द्वारा
 ही हो सकता है। एशियाई और यूरोपीय जातियों ने अपने-अपने ढंग से
 आरक्षण-केन्द्र परिचालन उत्पन्न कर दिखाए हैं। एशियाई जाति ने अपनी
 पूर्व आध्यात्मिक निष्ठा द्वारा और यूरोपीय जाति ने अपनी कठोर बौद्धिक
 निष्पक्षता द्वारा। जीवन की विमान जाति अपना उन प्रदेस के हस्तान
 के धनुकूल बनायी जाती है जिसमें होकर वह बढ़ती है। विचार और
 जीवन के क्षेत्र में इन दोनों महाजातियों के एक-दूसरे से स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा का
 फल यह हुआ कि उनकी अपनी बुद्धि कास विक्षेपताएं और विधि-विधान
 बन गए। परन्तु वस्तुतः मन और आत्मा की ऐसी कोई भी विक्षेपताएं नहीं
 हैं, जो अन्तर्मनुष्य से किसी एक ही जाति को बचींती हों। महान जातियों
 में अन्तर उतना इस बात का नहीं होता कि उनमें कोई अमुक विक्षेपता
 विद्यमान है या नहीं, जितना कि इस बात का होता है कि वह विक्षेपता
 जितनी मात्रा में या जितनी सीमा तक विद्यमान है। पश्चिम रहस्यवाद या
 बहिर्बान से एकदम शून्य नहीं है और न पूर्व ही विज्ञान और लोकभावना
 से रहित है। दोनों में यदि कोई भेद है, तो वह सापेक्ष है, जैसे कि सभी
 ऐहिक भेद हुआ करते हैं। जो कुछ मैं कहूँ यदि उसमें कुछ बद्धर
 सिद्धान्तवाद की प्रतीति हो तो वह कबल प्रतिपादन की सुविधा के लिए
 होनी। कारण यह है कि बद्धर सिद्धान्तवादी और सभीस राष्ट्रवादी भेद
 इसलिये करते हैं कि वे (विभाजन कर सकें), जबकि सरय का अन्वेषक
 इनलिये विभाजन करता है कि वह वेस्तुमा में भेद कर सके।

३

जीवित धर्म

धर्म के विषय में भारत पुनः का प्रतीक है। शैवोपनिषद् दृष्टि से यह सामी (सैमिटिक) पश्चिम और मंगोल-युद्ध के बीच में स्थित है। स्वर्गीय श्री मोक्षिण द्विकल्पन ने अपनी पुस्तक 'एस्से ऑन द सिविलिजेशनल फ्रीड इंडिया चाइना एंड जापान' (भारत चीन और जापान की सम्बन्धों पर निबन्ध) में लिखा है कि भारत ही एक ऐसा देश है जो पूर्व का प्रतीक है।¹ सामी भावना अपनी किम्बावाबिता और सत्ता के प्रेम की दृष्टि से पश्चिम की पश्चिम भारतीय है। रोम का निरन्तर पड़ोसी होने के कारण सामी एशिया में युद्ध और संगठन की भावना विकसित हो गई। यह पूर्व और पश्चिम के मध्य सम्बन्ध का प्रवेश है। फिर, मुहूर्तपूर्व में पौरस्त्य रहस्यवादी धर्म-धर्म सौन्दर्य और व्यवस्था के प्रेम में और व्यवहारवाद की भावना में पहुँच जाता है। बुनाम और रोम पश्चिम की भावना के प्रतीक हैं।

और धर्म बड़े तो जीवित धर्मों में ऐसा कोई भी नहीं है जिसका उद्भव पश्चिम में हुआ हो। वे सब के सब भारत ईरान या फिनिसीन में पले-पुसे हैं। उनमें से कुछ पश्चिम की ओर फैल गए। इस प्रकार ईसापूर्व एक पूर्वी धर्म है जिसकी कल्पना ले जाकर पश्चिम में लया भी गई और वहाँ रहने के स्वल्प धर्मता लिए भी पश्चिमी मन की विशेषता है। हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म पूर्व में ही रहे। यहूदीधर्म पर धर्मज्ञानिष्ठान (सिकन्दरियाई) विचारवादा के दिनों में पश्चिमी प्रभाव बहुत काय्ये पड़ा। ईसा से पूर्व के काल में सिकन्दरिया के यहूदी बुनामी जीवन और विचारवादा के सम्पर्क में आए। इस सम्पर्क का परिणाम धार्मिक दर्शन की यहूदी-सिकन्दरियाई विचारवादा के रूप में हुआ जिसका कि पश्चिम महान प्रतिनिधि फारसो वा। इस्लाम यहूदीधर्म से निकला और यह बड़ी सीमा तक पश्चिम में बुनामियों और स्पेनवाजियों का जन्म है। इसी और प्यारुषी शताब्दियों में जोकि इस्लामी सभ्यता का स्वरूप या विज्ञान और दर्शन की बुनामी

रचनाएँ धरती में मुबिहित थीं और बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियों में हुई महान विचार-क्रान्ति कुछ धरती धर्मों के सेंटिन धनुषारों के यूरोप पहुँचने के फलस्वरूप हुई थी। फिर भी यहूदीधर्म और इस्लाम मुस्लिमता पौरस्य हैं। हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म को पूर्ण धर्मों का प्रतीक माना जा सकता है क्योंकि ये दोनों ही उद्गम और विकास की दृष्टि से पूर्वीय हैं और ईसाइयत को पश्चिमी धर्म का प्रतीक समझा जा सकता है। कारण यह है कि यह जीवन का नियम है कि धर्म्य वस्तुओं की भाँति धर्म भी जगत् संघटनों की प्रकृति को अपनाते हैं जो उन्हें धाम्नात् करते हैं। ईसा की पिन्धु और सरत धिभाषा में तथा पश्चिम में ईसाइयत का जिस रूप में विकास हुआ उमम पाया जानेवाला धर्म धर्म के सम्बन्ध में पूर्वीय और पश्चिमी मनोभूतियों के धर्म का सुस्पष्ट उदाहरण है।

धार्मिक जीवन और बौद्धिक नियमनिष्ठा

पश्चिमी मन बुद्धिवादी और नैतिक, प्रत्यक्षवादी और व्यापारिक है प्रकृति पूर्वीय मन सांसारिक जीवन और मन्तर्जानार्थक विचार को धार धारिक भवा हुआ है। रॉबर्ट बिजिज अपने 'दि टेस्टामेण्ट ऑफ इयूटी' (कौन्द्य वा धर्मधर्म) में कहता है कि धर्मीय में पश्चिम धार्मिक धर्म के लिए पूर्व की धर्म ताज्जा या धर्म धर्म पूर्व पश्चिम की भौतिक विषयों से बुझिया-सा रहा है।

हमारे पूर्वक पूर्व की धर्म यात्रा करते व उन धार्मिकों का धामन्द
लेन के लिए

जहाँ विधमिध धर्मोद्धार और विचारधर्म वेगधुना

धार्मिकता के धुमिन धुमिध में धमधत है

और धर्म धर्म पूर्व के धर्म जगत् धर्म यहाँ धार्मिक

शाम्य तीर्थवाहा करने उनके लालबुध्दयकों में देखी है
 पश्चिम में बिबली की रोशनी धीरे से पूजा करने आते हैं
 वे आनन्द लेते हैं हमारी नदी मूतन वस्तुओं में
 और बिज्ञान की दरामार्गों में क्योंकि सब वस्तुएं अपने समय में
 सब की कारण या सफ़ाई हैं। सब कारण है—
 एक मिथ्या स्तुति जिसके द्वारा मनुष्य परमात्मा की स्तुति
 करना चाहता है।^१

मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि पूर्वोक्त विचारधारा का प्रमुख तत्व
 उसका सुबनधीस अर्थज्ञान पर आधारित है जबकि पश्चिमी प्रभावियों की
 विशेषता यह है कि वे मानवतात्मक दृष्टि पर अनेकानुसंधात्मक यत्न
 करती हैं।^२ बीबित मुनिदृष्टि, दृष्टि केवल तार्किक वस्तु से पृथक् विभक्त
 वस्तु है। उर्लघास्त्र की प्रकृति यह होती है कि प्रत्येक वस्तु को अलग-अलग
 रूप में पहचान लिया जाए। परन्तु कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो अपने
 अस्तित्व के दो मानवमिथ्या स्थानों में टिक रही रहती हो। बुद्धि बहती हुई
 धारा को बर्फ की छिला के रूप में जमा देने का यत्न करती है। सत्य एक
 ऐसी वस्तु है, जिसे जीवन में उठारा जाता है कर्मल तार्किक दृष्टि से हृदय
 गम नहीं किया जाता और फिर भी हमें विचार करने सिद्ध करने और
 अपने विचारों और कारणों को दूसरों को समझाने के लिए तर्क की
 आवश्यकता होती है। जहां पूर्व का यह विश्वास है कि ऐसी भी वास्तविक
 ताएं हैं जिन्हें स्पष्ट रूप से देखा नहीं जा सकता—धीरे-धीरे यहाँ तक मानता
 है कि उन्हें ऐसे रूप में सूत्रबद्ध करने के तार्किक प्रयत्न तक जिनके द्वारा
 उन्हें दूसरों को बताया जा सके उनको बोट पहुँचाते हैं—जहाँ पश्चिम
 स्पष्टता चाहता है और रहस्य से सजुबाता है। जो भी कुछ स्पष्ट किया जा
 सके और हमारी तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए उपयोगी हो वह

१ १ १०४-१०८।

२ हेन्रिच लेखक के 'जीवन का एक अद्वितीय दृष्टिकोण पर दिए गए विचार'
 आत्मज्ञान (१९१९), अ-भाग ५।

वास्तविक है जो अभिम्यक्त न किया जा सकता हो और निरूपयोग हो वह प्रवास्तविक है। यह ठीक ही कहा गया है 'भूतानियों में प्रखरता और कौशल होते हुए भी उनमें वास्तविक धार्मिक सद्बुद्धि कम थी। इस दृष्टि से अपेक्षाकृत धार्मिक व्यावहारिक परिचय और अपेक्षाकृत धार्मिक रहस्यवादी पूर्ण सदा एक-दूसरे से भिन्न रहे हैं।' रहस्यवाद के प्रति जेटो की सहानुभूति इस बात की सूचना है कि वह एक सामान्य भूतानी से कितना दूर हटा हुआ है।^१

परिचयी धर्मों में परिभाषा और रूप-निर्णय के लिए धीरता पाई जाती है। भूतानी मानना परमेस्वर की धार्मिक वास्तविकता के रूप में धारणा से धर्मवा एक अभ्यक्त धार्मिक धर्मवा संसार में व्याप्त एक छाया रूप धर्म की धारणा से संतुष्ट नहीं होती। उसे अपने देवताओं को मुनिदित् स्वभाव और मुनिचित्त धार्मिक गुण प्रदान करने ही होते हैं। उदाहरण के लिए एरोस एक सुन्दर व्यक्ति (समुज) ब्रह्मा है। भूतानी धर्म का मनुष्यत्वारोपण मुनिदित्त है।^२ उसके स्वभाव को 'मुनिदित्त करने का ही परिणाम यह हुआ है कि उसके देवता इतने मुनिचित्त रूपों में गढ़े गए हैं जो मुपद्यमानावृत्तियों में बिगाए गए बृहत् और सृष्ट्य धरीयों की भाँति हैं। ईसाईधर्म में ईश्वर के व्यक्तित्व पर दिया जानेवाला बहुत जोर भूतानी बौद्धिकभाव से प्राप्त उत्तराधिकार है।

कोई भी बौद्धिक धर्म विचारों का प्रमाणों के साथ रहस्यों का कट्टर

१ टास्टर ररेकन कुछ बात लिखित लेता 'जिसस द्वारा 'अन्तर्जातवादी' विवेकना प्योरथॉ संस्करण १९१६।

२ हेरिड ईकन 'द वे ऑफ़ रीलिज (१९११), पृष्ठ ४०।

३ हेरिड टास्टर ररेकन: 'भूतानी धर्म का धीर धर्म भी धर्म रचना प्रकृत मही है विज्ञा कि उनका अनुशासन: और उनके धारे विज्ञान और अंधकार में मनुष्यत्वारोप का निदान रक्त प्रभावकारी और सफ़ल रहा है कि कला कवी किम्वी धर्म धर्म में बही कला यथा।'— संसु वेस्ट वैज्ञानिक (१९११), पृ ११।

४ बॉन्गोर: 'प्रीक रिनिक्ल बॉर (१९१३), पृ १२ (दुर्मिध)।

सिद्धान्तों के साथ चपला कर देता है। उसके लिए ज्ञान के विषय सदा नहीं रहते हैं। अपरिवर्तनशील किंवदन्तियाँ और प्रतीक तो केवल गनाह या मुकौटे-मास होते हैं। वह शब्दों पर चमत्ता है और उनके अर्थ को नहीं समझ पाता।^१ इसका परिणाम होती है—निरंकुशता और उसके साथ-साथ जना होता है किसी विषयास या किसी कर्मकांड के आधार पर बना कोई संमेलन। कोई संपठित धर्म यद्यपि अर्थ उच्च प्रत्येक विश्वास का विशेषी होता है जो उसके अपने मत या विश्वास का विरोधी हो। यदि नया ज्ञान बुझाने विश्वासों के लिए खतरा बनता है तो उक्त ज्ञान को ही कष्ट उठाना पड़ता है। कोई भी संपठित धर्म (धर्म) अपनी सीमाओं के धर, यद्यपि ठीक कहा जाए तो अपनी सीमाओं के बाहर भी विचार-स्वातन्त्र्य की अनुमति नहीं दे सकता। वह विश्वासों को बलपूर्वक लागू करने और अविश्वास पर अत्याचार करने के लिए सिद्धान्तगत विषय होता है। यदि बुझाने का मुख्य नाम किन्हीं धार्मिक बुद्धों के कारण कसकित नहीं हुआ तो उसका कारण बुझाने का बहुत बढताभाव ही था। बुझाने लोको का यह हठ नहीं है कि यदि हम विश्वास को किसी धर्म नाम से पुकारें, तो हमें अनन्त अरुणता करना पड़ेगा।

पूर्व में धर्म धार्मिक जीवन धार्मिक है। यह अनुभव की दृष्टि में

१ धर्म-विज्ञान के अन्वय में मैट्रियोलॉजिकल कल्पना है : "जोड़े छोर पर बना जाए तो सन्तों को बचने उचित धर लय सुखित दरपरे में से होकर सुनिश्चित के अन्दर में बहुत अर्थसे। यह शिल्प का अन्वय प्रकृत करण है कि "धर्म के साथ बुझा हुआ कोई न कोई धर्म भी बनाने होता", तो मैट्रियोलॉजिकल कल्पना होता है। ठीक है, परन्तु इसे अपने विषय में बहुत किन्तु न करनी पड़ित कथोकि अर्थ धर्म सिद्ध हो जाता है, ठीक जती अन्तर पर धर्म हमारी अन्तरात्मा करता है। सन्तों के द्वारा धर्म-विचार बहुत अन्वये अर्थ से किन्तु या अन्वय है, सन्तों द्वारा कोई अन्वय या अन्वयनी भी नहीं हो सकती है। धर्म अन्वय के लिए एक बहुत बल विचार है। धर्म में से एक किन्ती एक भी विज्ञान करने की अनुमति नहीं है।"

विद्यमान वस्तु धर्म और सौन्दर्य की भावना के साथ एकता की अनुभूति है। इस प्रकार के दृष्टिकोण में बौद्धिक प्रस्थापनाओं पर बहुत अधिक बल नहीं दिया जाता। यह उनको इस रूप में स्वीकार करता है कि वे वास्तविक को मरल रूप में प्रस्तुत करने के भयङ्कर प्रयत्न हैं। इसका यह विश्वास है कि ईश्वरीय तत्त्व घलघ है धीर उसकी अभिव्यक्ति समस्त रूपों में सम्भव है। अभिव्यक्ति से भी 'परे' कुछ है जिस तक कोई अभिव्यक्ति नहीं पहुँच सकती हाताकि वह परे विद्यमान वस्तु सब अभिव्यक्तियों को सप्राण बनाती है धीर उन्हें तत्त्व धीर महत्त्व प्रदान करता है। इन्द्राइन धीर डेविड के मामों (पीतों) से सताश्रियों पहन हम एक अज्ञातनामा मिथबामो कवि की प्रार्थना सुनते हैं जो परमात्मा को मित्र या रक्षक के रूप में भजना मनुष्य की शक्त में मड़े गए रूप में भजना पापान की प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित प्रतीक के रूप में सम्बोधित नहीं करता। "बहु दिवाई नहीं पड़ता उसके न ता कोई पूजायी है धीर न कोई नैवेद्य उसकी पूजा मंदिरों में नहीं की जाती उसका निवासस्थान किसीको ज्ञात नहीं है। उसके किसी मंदिर में रंग-बिरंगी मूर्तियाँ नहीं हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं है जो उसे संभाल सके। उसका नाम स्वर्ग में भी अज्ञात है धीर उसका रूप अस्पष्ट है। इसलिए उसकी प्रत्येक मूर्ति व्यर्थ है। उसका जरमहसारा संसार है मनुष्य के हाथों द्वारा निर्मित कोई स्थान नहीं।" धार्मिक रूढ़ियाँ उतनी मर्य नहीं होतीं जितनी कि वे छोकर होती हैं। धर्म को बाह्य प्रमाणों द्वारा नहीं मापा जा सकता। किसी धार्मिक विचार या प्रतीक के ठीक धर्म को हृदयंगम करने के लिए हमें उस मूल्य या साम्यता को खोज निकालना होना जिसे कि वह अभिव्यक्त करता है धीर उपास्य करता है। धारमा किसी भी रूप के साथ नहीं बंधी हुई भले ही वह रूप जितना ही पर्याप्त क्यों न हो। पूर्वीय धर्म कट्टर सिद्धांतवादी नहीं हैं धीर सामान्यतः उनके अनुयायियों में वह वस्तु पाई जाती है जिसे धार्मिक सिद्धांत कहा जा सकता है। वे धर्याई का केवल इसलिए विस्मरण नहीं कर देते कि वह सर्वोत्तम नहीं है। वे व्यक्ति का उक्त रूप में धारण करते हैं जैसा कि वह है धीर यह सापेक्ष

नहीं करते कि जब वह स्वयं सुधार के लिए धनिष्कृत भी हो तब भी उसका सुधार किया ही जाए। न केवल स्वर्ग में धनेक प्रासाद है अपितु उन प्रासादों तक पहुँचने के वाहन भी धनेक हैं। हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म इस बात को स्वीकार करते हैं कि धडा के प्रत्येक रूप में सत्य का कुछ न कुछ अंश अवश्य विद्यमान है जिसका एक कुछ संश्लेष-सा परिणाम यह हुआ है कि इन धर्मों की परिधि में सब प्रकार की विदेशी पूजा-पद्धतियाँ घोर धन्य विस्वास पाए जाते हैं।

धमक-धमक बातों पर जोर देने का एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि पूर्व में प्रमं धार्म्यात्मिक परिवर्तन की वस्तु धर्मिक और वांछितपूर्ण विद्वत्ता की वस्तु कम है। हम सत्य को मानोचना और बाद-विचार द्वारा नहीं अपितु जीवन को गंभीर बनाने और चेतना के स्तर को बदलने के द्वारा सीखते हैं। परमात्मा सर्वोच्च शैपरूप नहीं है अपितु वह सर्वोच्च अस्तित्व है जिसे कि धनुष्य किना जाना है। महां लिच्छिमता बासे मुषों पर जोर दिया जाता है, जैसे मननात्मक धाम्ति और धात्विज बन जो धात्मसंभम का और काम, काय व चिन्ता के बिबुद्ध संघाम का परिघाम है। धर्म जीवन की प्रमुख वस्तु है, जो जीवन का प्रकृष्ट और जीवन का विधान है। हिरण्य का देव धनुस्तु धन्सार अपने दिव्यों से कहा करता था 'आकाश में उड़ना कोई धमत्कार नहीं है क्योंकि बन्धी से गन्धी मकियाँ भी आकाश में उड़ सकती हैं। पुस या नाव के बिना गरियों को पार कर जाना भी कोई धमत्कार नहीं है क्योंकि एक मामूली-सा कुत्ता भी ऐसा कर सकता है। परन्तु दुस्ती हब्यों को सहायता देना एक ऐसा धमत्कार है, जिसे पवित्रात्मा नोय किया करते हैं।' पूर्वीय धर्म ऐसे धात्विज धर्म और धात्मिक धिनधवा मरुधोर होते हैं जोकि जब से नहीं, अपितु एक ऐसी शक्ति से उत्पन्न होते हैं, जो भीड़ में जनका-मुकदी करके धीरों से धाये निकस जाने से इन्कार कर देती है।

५

निवृत्तिमाग बनाम प्रवृत्तिमाग

सबसे जीवन और सतिय सेवा परिचय को अधिक बजती है। उसकी दृष्टि में जीवन एक ऐसी वस्तु है, जिसपर अधिकार किया जाना है और जिसका आनन्द लिया जाना है। बुद्धिमत्ता इस बात में है कि परलोक में किसी प्रकार प्राप्त होने वाली सम्पत्ति की चर्चा प्रायः न लगाकर इस जीवन का अधिक से अधिक उपयोग किया जाए और इसे सर्वोत्तम प्रयोजन में लगाया जाए। जीवती तकि सपन-भापको बुझ जवग में अछट करती है और यह ब्रह्मांडीय प्रकिया मनुष्य के लिए ही अभिप्रेत है। व्यक्ति आत्मा की स्वतन्त्र शक्ति और सम्मिश्रित समुदाय का संगठित संकल्प महान उन्मत्तिकाएँ प्रकियाएँ हैं। मानवतावादी दृष्टिकोण से व्याख्यात व्यक्ति स्वतन्त्र का विकास और राष्ट्रीय दलता धारण महत्व है। तथाकार परम्पराओं के प्रति अनुकूलता का नाम है। यह एक अनुकूलता अथवा आसीनता की अनन्त के सम्बन्ध में प्रतीति को बनाए रखने की भावना है। सुनहला मध्यम मानव शक्ति विज्ञान को पुनर्निर्माण की शक्ति है। सब मामलों में 'अति श्याम्य है' बाहे किर यह आनन्द अथवा शक्ति के विषय में हो या सम्पत्ति या ज्ञान के विषय में हो। जगतमामन जतनी ही बही बुझाई है जितनी कि नाबरता। तपस्या जतनी ही बही बुझाई है जितनी कि विद्याभित्ता। पुनर्निर्माण की दृष्टि में परिचय विवेक है।

पूर्व में धर्म आन्तरिक जीवन का अनुस्वार करना है। यह आध्यात्मिक स्वतन्त्रता को प्राप्ति है और मुक्त एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता तपस्वि है जो सर्वतन्त्रियों पर या बटों में एकान्त और निरन्तरता में बटोर प्रयत्न द्वारा प्राप्त की जाती है। पौरुष्य मम को जता और उपयोग के जीवन की धोला कल के ऊपर विषय वादेनाते बुझ की प्राप्ति और कल्या, बुझ की समाप्ति में मीन विचारक का चिन्तन नाशितर बुझ के प्रेम में मन्त्र मत्त वा अस्माय महकारपूर्व इच्छाओं और भावों के ऊपर उठ हुए

मृत का विषय बड़ा के प्रति घालनसमर्पण नहीं प्रतिक महात्म्यपूर्ण जगता है।

पश्चिम में धर्म एक सामाजिक तत्त्व है, एक धर्म-मंडल का समुदाय का विषय। यूनानी नीतिशास्त्रा मूलतः जनजातीय थी। यूनानी लोग केवल उन लोगों के प्रति कर्तव्यों को स्वीकार करते थे जिनके साथ वे किसी विशेष सम्बन्धों द्वारा बंधे होते थे परन्तु घेप मानव-जाति के प्रति मनुष्य के रूप में मनुष्य के प्रति वे केवल उन्हीं सामान्य कर्तव्यों को मानते थे, जो भद्रता की भावना के कारण उनपर साधे गए होते थे। पश्चिम में धर्म सामाजिक स्थायित्व का एक साधन है और नई बातों के प्रचलन के विरुद्ध एक दाम के रूप में है। देवता सामाजिक रीति-रिवाजों के अग्रदाता हैं। उन उत्सवों पर जोर दिया गया है जो समूहों को परस्पर सगठन में बाँधते हैं। प्रच्छे नामरिक प्रच्छे घास्तिव हैं और जो निबनों का उत्सव करते हैं वे नास्तिक हैं। स्वभावतः राज्य एक धर्ममंडल (धर्म) बन जाता है और उसके रक्षक धार्मिक दृष्टि से सम्माननीय समझे जाते हैं। हूरनसुमिस और बीसिमस मनुष्य ने बिन्हे कि देवता समझ जाने लया। सिपियो ऐथ्रीकैनस का बेबीज सम्मान किया गया था और बुनिसस सीजर की प्रतिमा को देवताओं के समारोहपूर्वक जमूठ में निकाला गया था। रोमन सभाओं को उनकी मृत्यु के पश्चात् सर्वदेवमन्दिर में स्थापित कर दिया जाता था। वेरीकसीज के महान अत्येष्टि भाषण में जिसे कि यूनानियों के सपोष्य धर्म की धर्मिध्वक्ति माना जा सकता है, यूनानी देवताओं का कोई उल्लेख ही नहीं है। ऐबस के लिए कुछ करना ऐथीन के लिए कुछ करना है। बुरीपिडीज ने देवनों के विरुद्ध हुए महान युद्ध में अपने सैनिकों को प्रोत्साहित करते हुए बीसिमस के मुँह से ये शब्द कहसबाए हैं "ऐबस के पुत्रो यदि तुम इवन के बानों स तुल्यन लोपो के मजबूत जानों को रोक नहीं सकते तो समझ लो कि पैलास का पक्ष परास्त हो गया है।" डाक्टर कारोलस का कथन है कि "जिन धर्मों का कोई भी प्रतिमेल प्राप्त होता है, उनमें से

कोई भी इतना अधिक राजनीतिक नहीं था जितना कि यूनानी धर्म।" जो पूजा-पद्धतियाँ सामाजिक सद्भाव को बढ़ाती हैं उन सबको सम्यक् माना गया है। विब्रन ने अपनी पुस्तक 'डिक्साइन ऐंड फॉर डॉक्ट इ रोमन एम्पायर' (रोमन-साम्राज्य का ह्रास और पतन) में बताया है कि रोम के मजिस्ट्रेट "उन धार्मिक उत्सवों को बढ़ावा देते थे जो लोगों के रहन सहन को मानवोचित बनाते थे। वे भविष्यवाणी की कला का उपयोग नीति के सुविधाजनक साधन के रूप में करते थे और वे इस उपयोगी धारणा का समाज के दृढ़तम बन्धन के रूप में प्रादर करते थे कि बदला भेदभावों से देवता अथवा भग के अक्षय्य का बंध हम जन्म में या अगले जन्म में अक्षय्य देते हैं। परन्तु वहाँ वे धर्म के इन सामान्य सारों को स्वीकार करते थे वहाँ उनका यह भी विश्वास था कि पूजा की विभिन्न पद्धतियाँ समान रूप से एक ही बाँधित प्रयोजन को पूरा करती हैं और यह कि प्रत्येक देश में उस धर्मविश्वास का स्वरूप जो समय और अनुभव द्वारा स्वीकार किया जा चुका है वहाँ की जनताओं और वहाँ के निवासियों के लिए सबसे अधिक अनुकूल होता है। यूनानी सहिष्णुता राजनीतिक व्यवहारविहिता का परिणाम है सुविचारित विश्वास नहीं। यूनानियों का बहुदेवतावादी और उनकी राजनीतिक बुद्धि असहिष्णुता के विरुद्ध उनकी मुरदा थे। यदि मुकर्रात पर धर्याचार किया गया तो वह इसलिये कि वह राज्य के लिए उत्तरदायी था। पश्चिम में धर्म एक प्रकार के रहस्यवादी राष्ट्रवाद के साथ प्रामाणिकता माना है। पूर्वीय धर्मों में धार्मिकता का उत्पन्न प्रमुख है।

उपनिषदों की प्रहिता और बुद्ध की कक्षा तथा प्रेम धरणी दयापूर्ण बाँधों में प्राणी-जगत् के निम्न से निम्न रूपों को भी समेट लेते हैं। पूर्वीय धर्मों में परमोपरामगता की प्रारंभिकता है, जबकि पश्चिम के धर्मों की विशेषता इहलोत्पत्त्यप्रकृता है। पूर्वीय धर्मों का मध्य धर्मों और शासकों को ही प्रारंभिकता है पश्चिमी धर्मों का मध्य धर्म मनुष्य ही प्रारंभिकता है, जो मनुष्य ही प्रारंभिकता है। पूर्वीय धर्म समाज को बनाए

उन्होंने की-अपेक्षा स्वयं की धास्वना की मुक्ति के लिए अधिक प्रयत्नशील हैं। पश्चिम के धर्म धर्म को सामाजिक मुख्यवस्था के लिए एक प्रकार के पुनिसंस्थापना के रूप में बदल देते हैं। बुद्ध ईसा धीर मुहम्मद जैसे पूर्व के महापुरुषों ने संसार को एक नये ढंग में प्रवर्तित किया और धार्मिक परिवर्तन किये। उनकी देन मनुष्यों के मन के बरत में जाने-जाने की तरह बुनी हुई है। सीजर, कॉन्वेन और नेपोलियन सामाजिक मनुष्य के धर्म को सामग्री प्राप्त हुई उससे कार्य करके ही वे सम्पुष्ट रहे और उसे उन्होंने मुख्यवस्थित और शासीन रूप दिया। उन्होंने जीवन का कोई नया मार्ग नहीं दिखाया और उनसे दुखियों और पीड़ितों को कोई आनन्दना भी नहीं मिली। और फिर भी हमारी सामाजिक संस्थाया पर उनके कार्य की साप है। पश्चिम में हमें क्रियाशील लोगों की पर्यायवाचिका दिखाई पड़ती है, पूर्व में हमें जानाकार की सुखरतशीलता और सुखशील स्वप्न हत्या की वस्था वृष्टिपोचर होती है। पश्चिमी संस्कृति का धारण, जो यूनानी धर्म से निवृत्ता है, लोगों को आत्मरिच्छा के लिए इस ढंग से प्रवर्तित करता है कि वे राज्य में और राज्य के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति को समुच्च करने में तमर्ष हो सकें। पूर्व में धर्म धारण उके समझ जाता है, जो सारे संसार को अपना कर समझता हो। वे दोनों ही प्रकार बहुत आवश्यक हैं क्योंकि द्वितीय धर्मरततपुत्र समाज में धार्मिक प्रकाशना पलप नहीं सकती।

सर्वमुक्त विवेक पर धर्म मानवतावादी धारण सामाजिक एकता और राष्ट्रीय कार्यकुशलता से जीवन के प्रति पश्चिमी मनोवृत्ति के विवेकता सूचक सिद्ध है। पश्चिमी संस्कृति के महारतपूर्व कास—यूनानी कास कोम्टेस्टाइन से पहले का रोमन कबत् पुनर्जागरण का कास और हमारा धर्मना कास—उस महान परम्परा के साक्षी हैं जो धर्म और विज्ञान पर, नैतिक प्रवृत्ति की शक्तियों के और मन-धारीरिक संघी के रूप में मनुष्य की शक्तियों और सम्भावनाओं के मुख्यवस्थित ज्ञान पर, और उस ज्ञान के सामाजिक कार्यक्षमता और वस्याव के लिए अधिकारिक उपयोग पर

प्राधारित है, जिनके द्वारा मनुष्य का सपु जीवन अधिक सरल और सुख पूर्वक बन सकता है। ✓

६

ईसा का धर्म और पश्चिमी ईसाइयत

धर्म के प्रति पूर्वीय और पश्चिमी दृष्टिकोण और मनोवृत्ति का अन्तर तब स्पष्ट हो जाता है जब हम ईसा के जीवन और मुगमाचारों में मिली उसकी शिक्षाओं की गहनता धर्मधार के साथ तुलना करते हैं। यह अन्तर एक प्रकार के व्यक्तित्व और कट्टर सिद्धांतों के एक समूह के मध्य एक जीवन-प्रणाली और एक अधिबिद्या की प्रणाली के मध्य का अन्तर है।

मन्तःस्फुरणात्मक अनुभूति कट्टरसिद्धांतहीन सहिष्णुता और अनात्ममात्मक सद्गुणों और सार्वभौमवादी नीति के सिद्धांतों को बिनापताओं के कारण ईसा एक पूर्वीय धर्म के रूप में सामान्य मानता है। दूसरी ओर मुनिरिचत विद्वानों और तानाशाही कट्टर सिद्धांतों पर किया जान वाला बल और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली असहिष्णुता अनात्म्यता और पवित्रता का राष्ट्रीयता के साथ गड़बड़भ्रम—ये पश्चिमी ईसाइयत के सबसे महत्वपूर्ण अंग हैं।

ईसा का धर्म प्रेम और सहानुभूति का सहिष्णुता और अन्तमुगता का धर्म था। उसने कोई संमठन स्थापित नहीं किया, धर्मिणु वह केवल व्यक्तिगत प्रार्थना का उपदेश देता रहा। वह नाम-पदों और सम्प्रदायों के प्रति बिलकुल उदासीन था। उसने यहूदी और गैर-यहूदी में या रोमवासियों और मूलानवासियों में कोई भेदभाव नहीं किया। उसने एक नया धर्म सिद्धान्त की बात नहीं कही, धर्मिणु केवल साम्प्रदायिक जीवन को मज्जीर बनाया। उसने कोई सिद्धांत नहीं रखा और न विचार पर विद्वान्त की ही बलि थी। उसने यहूदियों के धर्ममन्त्रियों में शिक्षा पाई और गिला

थी। वह उनके कर्मकांडों का उस सीमा तक पालन करता रहा जहां तक कि वे अनुष्यों को धार्मिक प्रकाश के प्रति धम्मा नहीं कर बैठे। उसने निष्प्र प्रदर्शन की उक्तियों को कोई महत्त्व नहीं दिया। ईसा द्वारा उपरिष्ठ सरम सार्यों और सैम्यवादी बर्म में जिसका कि गठन सोपानतन्त्रीय या और जिसम सवस्यता के लिए बाह्य परलें की जाती थी परस्पर कोई साम्य नहीं है। परन्तु जब ईसाइयत रोम पहुंची थीर उसने सीवर की परम्पराओं को धपना मिया तक परिवर्तन अनिवार्य था। जब बहूरी ज्योतिषियों और भविष्यकताओं का स्वाग यूनानी उर्कसास्त्रियों और रोम के कानूनकताओं ने भी मिया तक ईसाईधर्म-विज्ञान का रूप उर्क संयत और कानून पर आधारित हो गया। भावना यहुदियों की ही रही परन्तु उसके सख मा धम सिद्धांत यूनाणियों के हो गए और उतका राजतन्त्र और संगठन रोमनों का बन गया।^१ ईसा ने अपने जीवन द्वारा

१. बाबर ईस लिखता है "बह बात तुलनता दीव क्तों में प्रकर तुरं है (१) इनमें से पहली बात बरिमाच करने को प्रवृत्ति थी। धार्मिक ईसाई केवल परमात्मा में विश्वास करने और उतकी पूजा करके ही लम्बुच थे। उन्होंने बहुत सारी चीजों से परमात्मा की कत परवा की बरिमाच करने का प्रयत्न नहीं किया जो उनकी महा और उनकी पूजा की तक में विषयक थी। वे परमात्मा का विचार एक जगह की और सर्वत्र सत्ता के रूप में करते थे परन्तु उन्होंने कत परमात्मा की बरवा के चारों ओर शक्तों की कोई क-ब नहीं बगुरं और उर्क की प्रकियाती द्वारा क प्रवृत्ति करने का प्रयत्न तो उन्होंने और भी कम किया कि परमात्मा के सम्बन्ध में उनकी बरवा सख थी। (२) मज के धार्मिक स्वभाव की दूसरी प्रविण्यित अनुप्यन की प्रवृत्ति थी, धर्मात् बरिमाचारी से विभर्ष निरूपणने की प्रवृत्ति, इन निष्कनों को प्रकियाती में (बादों में) रूढ़ने की प्रवृत्ति और किसी भी बरान्तों की कत प्रकियाती के साथ धार्मिक संगति का बरवृत्ति को बरखने की प्रवृत्ति। निष्कृत धार्मिक ईसाइयत के वास जितनी भी प्रकियाती की बरवा मरी के बरपर थी। किसी एक सख प्रकियाती बरवृत्ति की किसी बुरे सख प्रकियाती होनेवाले बरवृत्ति से बरवृत्ति का बरवृत्त कतकी प्रकियाती बरिमाच मरी होती थी। उनके निष्कृत संसार की विविधता और सख का सम्बन्ध में अनुप्यन के विचारों की विविधता को परिनिर्माण करते थे। (३) लीकृत मनों को परमात्मा जलै तो

इस बात को प्रकट किया और अपनी शिक्षाओं द्वारा इस सम्भावना को बढ़ावा दिया कि मनुष्य जिस प्रकार का जीवन सामान्यतया बिताते हैं उससे उच्चतर प्रकार का जीवन बिता पाना सम्भव है। वह धर्म-विज्ञान और कर्मकांड की बाधिकाओं का विवेचन नहीं करता अपितु यह बोधना करता है कि परमात्मा से प्रेम या वास्तविकता की प्रकृति में अन्तर्दृष्टि और मनुष्य के प्रति प्रेम या विश्वास के प्रयोजन के साथ एकात्मता धर्म के केन्द्रभूत सत्य हैं। पश्चिम में पहुंचने पर अन्तर्दृष्टि और भविष्यदर्शन का स्थान सम्प्रदायों और कठोर मिथ्याओं ने ले लिया और निष्पट ईश्वरप्रेम का स्थान विद्वत्ता की जटिल सूक्ष्मताओं ने छीन लिया। धर्म के सम्मुख प्रश्न यह नहीं है कि जिन विचारों का प्रतिनिधित्व वह करता है वे धार्मिक दृष्टि से भ्रष्ट हैं या नहीं अपितु यह है कि वे कौन-से उपाय हैं जिनके द्वारा समाज को एकत्र संयोजित रखा जा सकता है। रोमन विचारों और संस्थाओं का प्रभाव पारसियों के संगठन पर पड़ा।

७

धर्म और त्रिवेदीय

ईसा की दृष्टि में पवित्रता ज्ञान का विषय नहीं है और न धर्म ही पवित्रता का कारण है। उसकी तरफ धर्म संसृष्ट विमानों को बहुत प्रिय लगती थी। सेक्सस ने ध्यानपूर्वक कहा था कि ईसाई-समुदायों में प्रवेश

अथर्ववेद में विरवान और ऋषि पवित्र बंदिन-बानन करने के प्रत्येक के समय और धर्म में उसमें भी उल्लेख किया जाने लगा।" — ईश : "दि इन्सुप्लेन ऑफ द ग्रीक धार्मिक विचारों में ईश्वर के अर्थों में ईश्वर के अर्थों में (१८६) पृष्ठ १११-११७। इतिहास में धर्म का विकास : "बाइबल धर्मशास्त्र अन्तर्गत धर्म और विकास की १४ से धर्मशास्त्र का धर्म पर एक नया धर्मशास्त्र का धर्म है। — दिग्दी धर्मशास्त्र १४ १ पृष्ठ १७ (१८६१)।

के लिए नियम यह है "कोई विदित व्यक्ति इनमें प्रवेश न करे। कोई बुद्धिमान व्यक्ति इनमें न आए, कोई समझदार व्यक्ति इनमें न आए, क्योंकि इस प्रकार की बातों को हम बुद्धि समझते हैं परन्तु जो भी कोई पतानी हो जो भी कोई अबुद्धिमान हो जो भी कोई अशिक्षित हो जो भी निष्कपट हो वह यहाँ आए। उसका यहाँ स्थान है। इट्टिसिबन पूछता है 'एक बार्सलिक धीर एक ईसाई में एक यूनान के छिप्य धीर एक स्वर्ग के छिप्य में क्या समानता है?' धीर फिर भी यह निष्कपट भ्रष्टा जो यूनानी स्वभाव के इतना ठीक प्रतिकूल प्रतीत होती है जब यूनानियों द्वारा पपमा ली गई तो यह एक बर्म-वैज्ञानिक प्रवासी में स्थापित हो गई।

यूनानियों और रोमवासियों की परमात्मा में अति विषम की एक सैद्धांतिक व्याख्या के रूप में भी। पचीम का सचीम के साथ सम्बन्ध यूनानी दर्शन की एक बिकट समस्या भी और उसके समाधान के लिए ज्योती और धरतु में जो हम मुझए से वेधस्वप्न से धीर सन्तोषजनक नहीं के। प्रबन्धार सिद्धांत के रूप में एक हम दिखाई पड़ता था। इसके अनुसार परमात्मा मानव-व्यक्त से एक निरर्थक व्यवहार द्वारा पुनः कृपा नहीं रहता अपितु वह वस्तुतः मानवता में प्रविष्ट हो जाता है और इस प्रकार अस्तोवत्वा मानव-व्यक्ति के साथ परमात्मा की एकता को संभव बना देता है। ईसा में हमें ईशत्व और मानवत्व का मिलन दिखाई पड़ता है। कातालीस घाला इतिहासमय संसार में प्रविष्ट हो गई है। नाइसीन बर्मसार यूनानी धर्म विद्या की समस्या का समाधान है बहुवी धर्म की समस्या का नहीं। इस बर्मसार की रचना से लेकर अब तक अनेक सैद्धांतिक वाद-विवाद हो चुके हैं।

हम यह भी देखते हैं कि एक बर्का एकेवरावाव धर्म-धर्म विशेषकारी ईश्वरत्व में स्थापित हो गया। यूनानी लोग केषम पिता क्रियस की ही पूजा नहीं करते थे अपितु देवताओं और देवियों के एक पूरे समाज की पूजा

करते थे। यूनानी-लैटिन मूर्तिपूजा में जियस की कल्पना ज्युपिटर के रूप में की गई, जो सब देवों और देवियों का नेता था और वे देवता और देवियाँ उसमें ही दिव्यता प्राप्त करत थीं। जब मूर्तिपूजा बहूदेवतावाद और यहूदी एकेश्वरवाद भाषस में मिलकर एक हो गए तब एक कृपोसिक परमात्मा की धारणा विकसित हुई यह परमात्मा एक समाज है। रोमन साम्राज्यों ने जो राज्य की मापरिष्ठा और जर्म की मरम्मत के मध्य भेदभाव को समाप्त करना चाहत थे स्वाधीय देवी-देवताओं को लेकर उन्हें ईसाई सतों में परिवर्तित कर दिया।

रोमन साम्राज्य धर्याचार बरके ईसाइयत को लपट करने में असमर्थ रहा। परन्तु रोम पर ईसाइयत की विजय का साथ ईसा के मुसमाचार की पराजय का सूचक था। ईसाइयत उस मरम्मत के माध बन गई, जिनके नीचे रहकर यह पनरी। जब पवित्र ज्ञान का संसार धर्म-वैज्ञानिक रहस्यों का एक प्रकार का सरोवर-मा बन गया सब बह निम्नर मही रहा।

ईसाइयत एक संवृतिवाण धर्म है जो हमने प्राचीनतर अनेक धर्मों का मिश्रण है। यहूदियों, यूनानियों और रोमवासियों में तथा भूमध्यसागर के बन्दरगाहों में रहनेवाली जातियों ने हममें अन्तर्गमन किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमको और भी एक व्यपस्थित रूप उन्वार करने की बहुत आवश्यकता के बावजूद हममें व्यबस्तिन रूप का अभाव है। एक उगाहरण के तौर पर, परमात्मा के सम्बन्ध में हमकी धारणाएं एक प्रममय पिता से लेकर एक बटोर स्वाधीय एक मुप्तपर अष्टसर, एक बटोर अम्मापक और पापिजर्म के एक अन्वय सब सम्मती रहती हैं।

प्रारम्भिक ईसाइयत की उबारता और परवर्ती ईसाइयत में उसका अभाव

जब एक बार धार्मिक भ्रष्टा का अट्टर सिद्धांतकारी धर्मसार के साथ बपत्ता हो जाता है तब मनस्यता और असहिष्णुता धमिबार्म हो जाती हैं। अपने प्रारम्भिक रूप में ईसाइयत उम परिशमी विचारों और विवधाओं के प्रति पूरी तरह प्रवृत्त थी। जिनके सम्पर्क में यह आई थी। जैसे मुसलमानों में मोमोस (मुसलमान) के सिद्धांत को अपना लिया गया है और यह स्थिति स्वीकार की गई है कि जो लोग ईसा की पूजा करते हैं वे कोई नया देवता स्थापित नहीं कर रहे। जन्म ईसाई के लेखक को इस तथ्य के कारण कोई बेचैनी नहीं हुई कि मोमोस का सिद्धान्त मूलतः यूनानी वा और उसका सम्बन्ध मूर्तिपूजकों से रहा था। अट्टरता के सिद्धांत से संकीर्ण यहूदी धर्म से अलग कर नहीं रख पाए। अस्तित्व मार्टर बहु कह सकता था "पेटो की विद्याएं यद्यपि सब बुद्धिवा से ईसा की विद्याओं से मिलती जुलती नहीं हैं फिर भी वे ईसा की विद्याओं की विरोधी नहीं हैं। कारण यह है कि सब लेखक उनके धर्म रोपे यह धर्म के धर्मार्थी धर्म के द्वारा वास्तविकताओं का बूझना-सा बघन कर पाने में समर्थ थे।" और फिर भी बीबी घटान्नी में ईसाइयत में असहिष्णुता की मनोवृत्ति पत्त पई। ईस्वीपूर्व तीसरी शताब्दी में सिक्किरिया से प्रथम टोलेमी द्वारा स्थापित किया गया विद्यास पुस्तकालय जिसे कि उसके उत्तराधिकारियों ने लुप्त समुद्र किया था अंत में ईस्वी सन् ३८२ में ईसाई सम्राट जियोडोसियस के धारेण से नष्ट कर दिया गया क्योंकि वह समझ जाता था कि वह मूर्ति पूजावाद का अट्टा था।^१ कुछ शताब्दी पश्चात् जब ईसाइयत इस्लाम के

१ 'बोधोपासी' १०।

२ यह अर्थ है कि यह पुस्तकालय अस्तित्व मूर्तिपूजकों की सेवाओं द्वारा सिक्किरिया से अरे के समय नष्ट कर दिया गया था।

सम्पर्क में आई, तब भी इसने बँसी उदार मनोवृत्ति नहीं दिखाई जैसी कि इसकी प्रारम्भिक अवस्थाओं में थी। अतः इसने इस्लाम से बड़ी उपाय और बर्ना-बता के साथ जुड़ लिया। यदि हम यह मान भी लें कि इस्लाम एक संयुक्ताधी संघटन है एक बुद्धिमत् विचारणी जिसमें कि उसके अनुयायियों पर कुरान और उसके ध्यात्म-धर्मों द्वारा कठोर अनुशासन स्थापित किया गया है फिर भी हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि इस्लाम में आत्म की भावना जाति और राष्ट्रीयता की सब दोषों को क्षाम जाती है। यह एक ऐसा तत्व है जो धर्म अनेक बर्णों में नहीं पाया जाता। धर्म जब ईसाइयत भारत के बर्णों के मुकाबले में लड़ी हुई है वह फिर धर्म्य धारमसम्बन्धता की मनोवृत्ति को प्रपना रही है। एक के दिनों में इसमें जो विद्या ग्रहण करने की शक्ति व सहिष्णुता के तत्व थे वे खत्म हो चुके हैं।

यह यह उन्नति और स्वतन्त्रता का धर्म नहीं रही है अतः एक संघटन का धर्म बन गई है। अर्थ प्रकाशना का बाह्य है और केवल प्रकाशना ही प्रामाणिक है अर्थ नहीं। वैश्ववीय तत्व प्रामाणिक है और उतना मूर्खों में बोधा जाना प्रामाणिक नहीं है। जब कट्टर सिद्धान्तों को जामु विचार की दृष्टि से मूखबुद्ध करता है परन्तु वह किसी भी धर्मसिद्धान्त या मूल के लिए सर्वथा बौद्धिक दृष्टि से पूर्ण होने का दावा नहीं कर सकता। प्रतीत का चिन्तन किसी भी प्रकार वर्तमान के चिन्तन को घनावरण नहीं टहर सकता। ईसा के स्वतन्त्र और शरम धर्म तथा अर्थ की कट्टर सिद्धान्तवादी प्रणाली के मध्य वैश्व्य दोस्तीबस्की की पुस्तक 'कथमाजोब बग्यु' (द ब्रदर कथमाजोब) में 'महाधर्म-वरीधन' नामक अध्याय में प्रकट किया गया है। महाधर्म-वरीधन ईसा को बताता है कि अर्थ में उनके लिए हुए काम को उभट दिया है उसे सही कर दिया है और उसे प्राधिकार के आधार पर नये सिरे से स्थापित किया है। मनुष्यों की धारणाएँ विमनुष्य भर्षों की तरह हैं और वे स्वतन्त्रता के उच्च अर्थकर उपहार को सहन नहीं

१. बुद्धिधर्म के बर्णों की अनेक बड़ी अधिक प्राप्ति बड़ी अधिक विरक्तनी और बड़ी अधिक आध्यात्मिक।—दोस्तोव 'द ब्रदर कथमाजोब' (१९११) पृष्ठ ११।

कर सनीं जो ईसा लावा था। धर्म ने मनुष्यों को ज्ञान और स्वतंत्रता का पड़ताल से दूर रखकर उनपर दया दिखाई है। उसने अपने स्वयं को मानसिक बाध बना लिया है। विश्वास करना स्वयं है और धरिदरता करना गरक। जरा विमोहोचितता हाथ बनाए गए उठ समनात्मक काव्य पर, विश्वके द्वारा ईसाइयत के अनायास्य किसी धर्म को मानना मना कर दिया गया था और मानने पर धर्मकर दण्ड दिए जाते थे अस्तित्वगत हाट ऐबेस में दर्शन से विद्यालयों के बद कर दिए जाते पर ऐस्वीयवेधिता धर्मयुद्धों (विहायो) डोमीनिकन धार्मिक म्यावालयो एमिग्रावेकालीन इम्पेड में सर्वोच्चता और एककपता (गुप्रीमैसी और शुमिफ्रॉमिटी) के कानूनो समहवी सताम्बी में हुए धार्मिक युद्धों और अतिस्मा बहण न करवेवाले सोपों पर किए जानेवाले अत्याचारों पर विचार कीजिए। पियस नवम ने सोपवा की थी "हमे इस बात को धरकी तरह समझ सेना चाहिए कि बौध्दिक सिद्धांत के अनुसार केवल एक परमात्मा है एक धर्म है एक अतिस्मा है तथा (धामाधी) के धर्मिय के बारे में खोज करने के सम्बन्ध में) और धारो बढ़ता पाप है।" वे धार्मिक भी जो धर्म के पुजारी होने का दावा करते हैं बौद्धिक धर्मों की ठानाछाही विशेषता से दूरी लख मुक्त हो जाने में असमर्थ रहते हैं। जहां वे बहु स्वीकार करते हैं कि ईसाईधर्म ही एकमात्र धर्म नहीं है, जहां वे बहु भी विश्वास करते हैं कि यह (धर्म ईसाईधर्म) परम धर्म की परम अतिस्म्यक्ति है। इसमें हम देखते हैं कि धास्वत को ऐहिक के अन्तर ठूसा जा रहा है। जैसा कि हेबल ने कहा है "ईसाईधर्मने पूर्ण धर्म है बहु बहु धर्म है, जो परमात्मा के अस्तित्व का अनुभूत रूप ने या स्वयं धरने लिए प्रतिनिधित्व करता है बहु यह धर्म है जिसमें धर्म धरने सम्बन्ध में स्वयं धरना लक्ष्य बन गया है।" धरनु यह हम ईसा की शिलार्यों के प्रति सच्ची निष्ठा रखें ता हमें पता चलेपा कि परम धर्म सब विधि-विधानो और सम्प्रदायों से सब ऐतिहासिक प्रकाशनाओं और संस्थाओं से परे है।

२

राष्ट्रीयतावादी पक्षपात

ईसा चाहता है कि हम धर्म को अपने जीवन का प्रकाश और बिजान बनाएं। उसने धानुष्यनिक कर्तव्यों के स्थान पर एक नैतिक धारणा प्रस्तुत किया। एक भग्न और धनुतापयुक्त हृदय' बाह्य विधि-विधानों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। ये बाह्य विधि-विधान परमात्मा की संप्राप्य बनाने वाली धनुसूक्ति के बिना धर्म और निष्फल बस्तु हैं। ईसा ने उन कठोरियों (पालखियों) की निन्दा की, जो स्वयं के साथ बहुत सस्ते में समझौता कर लेता चाहते थे। परमात्मा की पुकार पिता और माता पत्नी और पुत्र के बावों की ओरता धर्म प्रमुल है। हम धर्म को अपने जीवन का रूप गइने, वाली शक्ति बनाने को तैयार नहीं हैं। हम इसे मृताभियों की 'गरमी' (हसकापन) के साथ ग्रहण करते हैं। संत लोग मामाम्मलया धसग प्रकार के प्राणी समझे जाते हैं जो परमात्मा की वास्तविकता को खोजने के लिए ऐहिक जगत् से दूर भागते हैं। वे प्रार्थना और भक्ति का जीवन बिताते हैं। एकांत और पृथक्ता उनके अस्तित्व का मूल हैं। पश्चिम में भी जिनपर ईसा की भावना का गहरा प्रभाव है वे हिरनों को बारा खिनाते हैं नखनों से बाधनाप करते हैं और यदि वे कर्मधास हा, तो वे रोगियों की सेवा करते हैं, और परमात्मा के दर्शनों को प्रचार करते हैं वे जलता से प्रसन्नता पाने के लिए धसबा मामाजिक सम्मोच पाने के लिए उत्सुक नहीं रहते।

ईसा के सिद्धांतों पर धारण करने का धर्म होगा नारी मानव जाति का एक समाज एक ऐसा समाज जिनमें हम एक-दुसरे का नार बहुत करते हैं और एक दूसरे से धान्द और नष्ट में सहानुभूति रखते हैं। इस प्रकार का समाज राष्ट्रीय प्रतिद्विष्टताओं और धौधौपिक प्रतिधौधिताओं से रहित होगा क्योंकि वह उन बाह्य बस्तुओं को बहुत कम महत्व देगा जिनमें कि एक मनुष्य का नार दूसरे मनुष्य की हानि होना है परन्तु हम नीतिधारन का इन प्रकार का दृष्टिकोण धनाने के लिए तैयार नहीं हैं।

ईसा हमें चेतावनी देता है कि यदि हम अपनी आत्मा को संभार साँस संसार को भी प्राप्त कर लें यदि हम अपने बुरे विश्वासों के मूख्य पर संसार के साथ समझौता कर लें तो उसका कोई लाभ नहीं है। प्राकृतिक सत्यतत्त्व और धार्मिक ईमानदारी परम आवश्यक हैं। धर्म का वास्तविक ज्ञान परमात्मा के निकट उठना नहीं होता बितना कि वह राष्ट्र का सेवक होता है। सेवक बोन (बोन डॉक डॉक) का स्पष्ट मत था कि जो कोई फ्रांस पर आक्रमण करता है, वह परमात्मा पर आक्रमण करता है। उसने बोपना की कि फ्रांस सदा सत्य के पथ पर रहा है, फ्रांस सदा परमात्मा के पथ में रहा है और फ्रांस का विरोध करना सत्य का और परमात्मा का विरोध करना है। ईसाइयत का सम्बन्ध राष्ट्रीयतावादी बर्म कि साथ जुड़ा गया है जिसके अनुसार प्रायः राष्ट्र अपने-आपमें एक उद्देश्य है एक ऐसा उद्देश्य जिसके लिए सत्य और नैतिकता ग्याय और सम्यक्ता अनिवार्य रूप से अभीनी हैं। बर्म राज्य का दास बन गया है। गठ महायुद्ध में केवल स्केफ्टों को छोड़कर बाकी सामंतिवादी लोग अधिकृत नहीं थे बाहर थे। ईसा ने सुसमाचार को मजबूती राष्ट्रीयतावाद के साथ जोड़ने के बिना प्रतिपाद किया था। एंग्लिकन बर्म ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ उसी तरह जुड़ा हुआ है जैसे कि इस में यूनानी बर्म चारणाही के साथ जुड़ा हुआ था। ईसाइयत के राष्ट्रीय बर्म ईसा के सुसमाचार के बिना बने बिना रह सके हैं। ईसा की धारणाओं को जिस रूप में कि वे परिश्रम द्वारा प्रस्तुत की गई हैं, लोगों ने धारणसात् नहीं किया है। यदि बर्म के अनुयायी ईसा के सुसमाचार का सम्मीरता में पालन करना चाहते हैं तो बर्म के सत्य पराधिकारी विनिष्ठ हो उठते हैं, हालांकि वे पृथ्वी बलिबों से धारणिकृत बर्मों की बुचल सीसे वाली बिक्रमियों में एक सत्रावट के प्रतीक के रूप में ईसा का उपयोग करने के लिए पूरी तरह सामायित है। इमर्सन ने कहा था कि प्रत्येक स्टोइक (विरक्त) स्टोइक होता है परन्तु ईसाई-जगत् में ईसाइयों को खोज पाना कठिन है। नीले ने व्यंग्य करते हुए कहा था कि संसार में केवल एक ही ईसाई था और वह बाह्य बर बढ़कर मर गया।

१०

धर्म और धर्म विज्ञान

जहाँ धर्म की पारा पूर्व से पश्चिम की ओर बही है, वहाँ धर्म-विज्ञान की पारा इनसे ठीक उल्टी दिशा में बही है। पश्चिम के बौद्धिक धर्म में, जिसमें कानून व्यवस्था और परिभाषा के प्रति प्रेम पाया जाता है, धर्म महत्त्वपूर्ण मन्त्रादायक हैं और साथ ही कुछ बोध भी हैं। ठीक वैसे ही जैसे कि पूर्व के अस्तित्व-कुरमात्मक धर्मों में हैं। इनमें से एक अनसंसार में समझदारी ज्ञान और अनुशासन भरा है। दूसरा स्वतन्त्रता मौलिकता और साहस प्रदान करता है। आज यदि कुछ धार्मिकता और अधिकारपुत्र नियम का स्थान पारस्परिक सम्बन्धन से तो इन दोनों के मिलाप से एक मुद्दह धार्मिकता एकता का मार्ग बिचर हो सकता है। पूर्व में धार्मिकता जीवन के प्रति अतिरिक्त भावनात्मक और भौतिक दशाओं के प्रति उदासीनता के रूप में प्रकट हुआ है, जिनके हाने पर ही धार्मिकता एकता को निम्नलिखित किया जा सकता है। पूर्वीय धार्मिकता निष्ठा और श्रद्धा के रूप में जोकि जीव है और अष्टता को माननेवाली है, परन्तु वह चुकी है।

हमारे पुराणपन्थी ब्रह्म इस समस्या को विद्वानों की दृष्टि से देखते प्रतीत होते हैं वे धर्मों और श्रद्धा का सहाय न लेकर धर्मों और मूल-धर्मों का सहाय लेते हैं। हमारे नातिकारी लोगों को जिनके मन पहल करने की दृष्टि से बिनाकुल अनुभव हैं और जो अपना अनुभव को व्यक्त हैं पश्चिम की पटिया नकल करने में ध्यान धाता है। पश्चिम के धर्म की उत्कृष्टता इस रूप में निहित है कि वहाँ व्यक्ति अपनी मुक्ति दूसरों की सेवा करके प्राप्त करता चाहता है। मनुष्य के साथ साभिप्य स्थापित करने के यत्न में एकान्त नहीं हो जाना चाही नहीं है। धर्म केवल जीवन से ऊपर उठना ही नहीं है अपितु जीवन को समझना भी है। सभी पूजा दुर्गा मानवता की सेवा में है। धर्म के रूप में धर्म इस विनमरकारी सिद्धांत का समर्थन करता है कि प्रत्येक मानवीय धार्मिकता का धर्मिक मूल्य है। धर्म धार्मिकों की श्रेष्ठ

समानता का ध्यान मनुष्य और मनुष्य के मध्य व्यवहारों को समान कर देता है। सच्चा धर्म मानव-जाति की एकता की अस्तित्व द्वारा साम्यवादी समाज के निर्माण के लिए कार्य करता है। यह राष्ट्रीय या महाद्वीपों की सीमाओं में नहीं बंध सकता, प्रकृति इसे समूची मानव-जाति को अपनी गोर्नी में समेट लेता होगा (मनुष्य के प्रति इस प्रेम) की वह भाव है कि हम अन्य व्यक्तियों के विश्वासों का आधार करें, यह एक ऐसा तथ्य है, जिसकी दृष्टि से पूर्वीय धर्म पश्चिम के धर्मों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। यह सामान्य मानवीय दृष्टि होती है कि अपने विचारों और प्रयासों को अपने सभी मनुष्यों के ऊपर बोपा जाए। इस प्रकार की मनोवृत्ति के साथ हम सबकी एक कृत्स्न सहायता रूढ़ि रखती है। सच्ची सम्मति के प्रति विशेष रूप से सब धर्मों में मानव-जाति की साम्यवादी धार्मिक धर्मों से सम्बन्ध हो विरस्तार से बढ़कर वृद्धि वस्तु धीरे धीरे नहीं है। धर्म हम उस प्रकार धर्मों के बाध नहीं हैं, बस कि हम कभी से। धर्म हम नामों की पृष्ठभूमि में विद्यमान जीवन को देख पाने में समर्थ हैं। वह समय बितना हमसे से कई धार्मिक करते हैं उससे जल्दी भा सकता है बुद्धि विरक्त, मस्तिष्क और मस्तिष्क सब सम्माननात्मक लोगों का स्वीकार करते, जब पारस्परिक साहचर्य और सेवा के लिए ईश्वर उक्ति और मनुष्य के प्रति प्रेम ही एकमात्र आवश्यक शर्त होती, जब समूची मानवता अपने ही एक नाम द्वारा मस्तिष्क/किन्तु एक भावना द्वारा बंधी होती) वास्टर पेटर ने अपनी पुस्तक 'दि रिसॉस' (मनोत्वान) में एक कथा दी है कि जब जेरुसलम की भूमि से एक जहाज में भरकर लाई गई पवित्र मिट्टी पीसा में कैम्पो साब्दो की सामान्य मिट्टी से मिल गई तो उससे एक नया फूल पैदा हुआ जो उससे पहले मनुष्य द्वारा देखे गए सब फूलों से मिला था—उस फूल के रंगों का मेल विजलप्य था और उसके तन्तु बहुत सुन्दर रूप में सम्मिश्रित थे। क्या वह संभव नहीं कि धार्मिकी दुर्गों में पूर्वीय और पश्चिमी धर्मों के मिश्रण से एक अनुपम धर्म और प्राच्य का एक ऐसा ही फूल सिद्ध उठे ?

तीसरा अध्याय प्रलय और सृष्टि'

"घोर पृथ्वी हचरहित घोर सूख पी घोर समुद्र के मृच्छ पर धगधगर छाया वा घोर ईश्वर की धारमा जल के ऊपर गति कर रही थी।" सृष्टि की पुस्तक' (बुक ऑफ जेनेसिस) की बहुत प्रतिकूल धारणा है। घोर प्रलयमें पाए जानेवाले सृष्टि के वर्णन की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बहुत बड़ी ध्यानबीज की गई है। ईसाई पादरी अपने रबिबारीय प्रवचनों के लिए निरन्तर इससे सामग्री पाते रहे हैं घोर यदि विज्ञान घोर धम के मध्य चलने वाला बाद-बिचार सब के लिए समाप्त हो जाए, तो मेरी कृपि स्थितिवाले लोगों के लिए यह बहुत कठिनाई का समय होगा।

१

विज्ञान और धर्म

घाब में 'सृष्टि की पुस्तक' में दिए गए सृष्टि के विवरण का किसी ऐतिहासिक समय के रूप में धरना धारण' शब्द के रूप में प्रतिपादन करने नहीं जा रहा। धर्म विज्ञान नहीं है घोर यदि यह विज्ञान के शोध में समविचार प्रवेश करता है तो अपने जोरिब पर ही करता है। जब एक बिगान साइट पुट के १९१८ में एक लेख में यह घोषणा की थी कि मनुष्य को गया (पिता पुत्र घोर पवित्र धारणा) में ५००४ ई० पूर्व के समयमें ही बने पूर्वाह्न में धारणा

१. दे-वेग्यर बालिक बालककोई में मध्य १९११ में दिए गए अध्याय।

२. 'जेनेसिस' १: १।

वा तब वह विचारमात्मक विज्ञान के क्षेत्र में धनविकार प्रवेश कर रहा था और आसोचना को आसन्नित कर रहा था। क्योंकि इस प्रकार का विचारक देना संसार के सम्बन्ध से सम्बन्धित है जोकि विज्ञान की समस्या है। यह संसार के रहस्य से सम्बन्धित नहीं है जोकि धर्म का विचारक्षेत्र है।

विद्युत की वैज्ञानिक व्याख्या—जोकि सारे संसार को बिलियर्ड के एक धनुष्य खेल के रूप में बखन देती है। जिसमें कि गेंदें परमाणु हैं, जो आपस में टकराती हैं और अपनी गति प्रायः एक-दूसरे को देती जाती हैं—केवल यह बताती है कि वे क्यों किस प्रकार बटित होती हैं। यह नहीं बताती कि वे क्यों बटित होती हैं। उन लोगों तक में भी जो यह समझते हैं कि धीरे धीरे प्रयत्न करना अनावश्यक है, एक ऐसी मनोवृत्ति की अनुभूति आनन्दित होती है, जो अब तक उन्हें अनुभव नहीं हुई थी। वे अस्पष्ट रूप से अनुभव करते हैं कि विश्व का अस्तित्व सबसे नहीं अधिक गहरा है। जितना कि हमारी इन्द्रियों का बुद्धि को ज्ञात हो चुका है। विज्ञान की प्रगति से हमारी विस्मय की भावना और अपने पास-पास के रहस्य के प्रति हमारी उन्नत चीलता किसी प्रकार बटती नहीं है। यदि हम अपने इस भ्रम को स्मरण करें कि कभी हम यह समझते थे कि हम ही सारे संसार के केन्द्र हैं और परमात्मा की सर्वोत्तम कृति हैं, तो हमें बड़ी लज्जा अनुभव होती है, क्योंकि हम तो एक मध्यम कोटि के तारे के, जो अन्ध अन्धगिनत तारों से कहीं छोटा है, यह-अन्धस के अस्वादी निवासी-भाव हैं।

जो लोग अन्धतर धर्मों की बहाना-सम्बन्धी अस्पताओं से सुपरिचित हैं वे जानते हैं कि कुछ ऐसी समान परम्पराएं हैं, जिनका इन धर्मों में उपयोग किया है। परम्पराएं सुबद्ध होती हैं और उनमें उसकी अपेक्षा कहीं अधिक बस्तु होती है जितनी कि ऊपर से दिखाई पड़ती है। वे धार्मिक विचारों की बाहक होती हैं और यदि हम ध्यान उनका उपयोग करते हैं तो वह केवल उस धार्मिक महत्त्व के कारण जितनी कि वे चीतक हैं। हमारे मूल अन्ध अन्ध बातों के साथ-साथ इस विश्व की अन्ध-अन्धता के धीरे एक सर्वोच्च लोकतांत्रिक आत्मा पर हमकी निर्भरता

के प्रतीक हैं। यह बिस्व अपने-आपमें मयेष्ट नहीं है यह एक मन्मीर प्रमाह रूह्य है इसकी व्याख्या की जानी चाहिए घोर यह व्याख्या केवल एक सर्बोच्च बुद्धि घोर प्रयोजन के रूप में की जा सकती है य मय बात इस वर्धन में मान ली गई है। ऐरिस्टोफेनीज के 'दि बसाउड्स' (बावम) में ब्रूडा स्ट्रेप्सियेनीज मुकराठ से पूछता है 'बह कौन है जो बर्पा भेजता है? बह कौन है जो बाहनों म गरजता है?' घोर बाधुनिर मुकराठ उत्तर देता है "डियस नहीं अपितु बादल।" स्ट्रेप्सियेनीज पूछता है "परन्तु डियस के सिवाय घोर कौन बाहनों को जता सकता है? इसके उत्तर में मुकराठ कहता है "उप भी नहीं यह तो बाधुमण्डस का बबंदर है।" स्ट्रेप्सियेनीज सोचते हुए कहता है "बबंदर ! मुझे मानुम नहीं था कि डियस मुजर जाता है और धय उसका पुत्र बबंदर उसकी जगह नामन कर रहा है घोर इस प्रकार बह ब्रूडा मनुष्य बबंदर पर जतना का आरोप करके अपने धापको समोप दे भेठा है। डियस के स्थान पर बबंदर को धयबा परमात्मा के स्थान पर प्रकृति को या बीबनधमिन (ऐसा बाहलान) को रखकर हम भी वही बात करते हैं। धाधुनिर विज्ञान ज्ञान के इन प्राचीन धर्मों का विरोधी नहीं है 'प्रारम्भ में परमात्मा'। एक प्रमुख बैज्ञानिक सर जेम्स जीम्स ने बताया है कि समानधारणी को यह बिस्व एक विद्यास मन्म की धनेता एक महान विचार अधिक प्रतीत होता है घोर इसका रचयिता एक काटीपर की धयता एक मधिनत अधिक मानुम होता है। वस्तुओं की पृष्ठभूमि में हमें एक महान मन दिनाई बढ़ता है।

२

निराकार घोर दृश्य

'घोर पृथ्वी धाधाररहित घोर दृश्य थी घोर मनु' के धुम पर ध-धकार प्पना था।' कृष्टि-विषयक बैज्ञिक मन्म में भी उगा जल के रूपका प्रयाग

किया गया है—अप्रकेतं समित्तं सर्वम् । जिसकुल प्रारम्भिक रक्षा प्रसंग की मङ्गलकी घोर प्रध्वनत्वा की घराबकटा घोर अनिश्चितता की रक्षा भी जिससे मन को संतोष नहीं होता । यह घोर घन्यकार की रक्षा है । तारे भी नहीं बमक रहे ।

‘परमात्मा की धारणा पानी के ऊपर गठि कर रही थी ।’ एक घोर मंत्र में कहा गया है कि वह पानी पर ‘ध्यानमन्त्र’ थी । ‘परमात्मा की धारणा उजाड़ घोर सूय के ऊपर ध्यान कर रही थी घोर उसने प्रकाश घोर भीषण उत्पन्न किया । यह बैठकर ध्यान करने का प्रतीक परम्परागत बिस्वोत्पत्ति सिद्धांत से लिया गया है जिसमें कि संसार की तुलना एक घंटे से की गई है घोर परमात्मा को उस घंटे को ऐसी हुई चिड़िया माना गया है । उस पसी-सदृश भीषण शक्ति की ध्यानमन्त्र होकर बैठने की शक्ति से ही भीषण घोर प्रकाश उत्पन्न हुआ है । उपनिषदों में भी हमें संसारबन्धी घंटे के ऊपर बैठे हुए परमात्मा का रूपक उपलब्ध होता है ।^१ इतना प्रबन्ध है कि हमें बैठने का धार्मिक धर्म नहीं भिना है । तपस्, सचेत बस को ऊर्ध्वस्थी बनाना कठोर चिन्तन घोर धारणा का अन्तर्मुख प्रयास ही वह ‘बैठना’ है जिससे सारा सृजनशील कार्य उत्पन्न होता है । तपस् ही वह शक्ति है, जिसके द्वारा कोई महान सम्भावना वास्तविक रूप धारण करती है । स तपोऽप्यस्य स तपस्तप्त्वेन सर्वमसृजत् । उसने तप किया तप करके उसने इस सबको उत्पन्न किया ।^२ यहाँ तपस् का धर्मिप्राम्य है—कठोर चिन्तन वा मनन ।^३ सुख्यवस्थित संसार पूर्वतया ध्यानमन्त्र होकर बैठने की बुद्धिमत्तापूर्व घोर सोहेय गतिविधि की उपज है । ‘सृष्टि की पुस्तक’ (जेनेसिस) के पहले अध्याय में सृजन के एक के बाद एक विनाए गए कार्य धारणा की इस शक्ति

१ ‘जेनेसिस’ लिप्यन्तों और महाविषयकों के लिए ‘कौन्सल वारन्टि ।

२ जेनेसिस वरन्टि १ ५ । १ २ ।

३ टैपिरीय वरन्टि २ २ १ । कृष्णवक्त्र वरन्टि १ २ २ ।

४ तुलना कीदिए, बस धामधर्म तपः । “चित्तिका तप वस्तुतः धाम है ।” — तुलना वरन्टि, १ १ २ ।

के कारण हो हुए हैं जो अपने-आपको पूरी तरह अनुभव करने के लिए एक के बाद एक संसार का सृजन करती हैं। भ्रातृत्विक स्थितियों पर विचार करने के द्वारा हम उन्हें बाह्य रूप धारण करने देखते हैं। हम जीवन को अभिव्यक्त होने में सहायता देते हैं। वह सृजनमयक पतिविधि तब तक जारी रखेगी, जब तक कि धारण अभिन्न रूप से विजय प्राप्त न कर लेगी।

हम सृष्टि के धारण से लेकर हमारे अपने काम तक धीरे धीरे बढ़ते पाए हैं। बाइबिल में कहा गया है कि शुरू में शून्य था यह शून्य धारण हमारे सामने थी है। जेरेमियाह के पद्यों में "जब उपजाऊ स्थान उजाड़ था और उसके सब बाहर दूटे पड़े थे" वह प्रलय की दशा थी (४ २६)। संसार धारण भी प्रलय (अभ्यवस्था) की दशा में है। उत्पन्न की मात्रा बहुत अधिक बढ़ गई है और हार्मोनिक वह संसार की विनाश बनसुंस्या को घन और बरत देने के लिए पर्याप्त है फिर भी संसार में अत्यधिक खिड़ता है। हम प्रचुर सम्पत्ति से भरे संसार में बहुत ही समीप जीवन बिता रहे हैं। जहाँ एक ओर युद्ध के ज्वलन वर्तमान मन्वी और बढ़ता हुआ यन्त्रीकरण जैसे प्राबिक तम्य अक्षय्य रूप से राग्यों की परस्परामितता को विद्ध कर रहे हैं, जहाँ दूसरी ओर हम शहरों की दीवारों और चुमियों की बाड़ें खड़ी कर रहे हैं और राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विताओं को बढ़ा रहे हैं। बिक्रिस्तायात्म ने उच्च स्तर की निपुणता प्राप्त कर ली है और हमारे लिए अधिक सरलतापूर्वक और मुम पूर्वक भी पाना सम्भव है और फिर भी हम स्वयं और धारण्यमुक्त जीवन नहीं बिता पाते। राजनीतिक स्थिति बहुत ही विरोधकारी है कारण यह है कि स्वयं राष्ट्रिय राग्यों का संसार वर्तमान तम्य मानवता की दशा के लिए उपयुक्त नहीं है। समाज की नीबें टूट रही हैं। प्राचीन सद्गुणों को पुराना कहकर तिरस्कृत किया जाता है। हमारी सामाजिक बहियों को केवल कल्पना-मय बनाया जाता है और अब हम उनका पालन नहीं करते। हम बड़ी दरिद्रता कष्ट व विस्थाओं में पंथ हैं। हमारे हाथों में धारण गतिन की महान उपसम्पियां बिपति और संकट बन गई हैं। मने ही धारणिक

महा धीर वृथा न हो परन्तु उससे भी एक अधिक बड़ा कष्ट विद्यमान—आत्मा का एक कहीं अधिक उधरोय। इयाच संसार एक ऐसी मज्जा की के समान है, जिसने अपना पुराने मस्तिष्क को उतार फेंके हैं, परन्तु जो नये रूप प्राप्त करने में असमर्थ रही है। इस सम्बन्धिता धीर गड़बड़-झंझ में सिकर हम इधर-उधर बहते-मर प्रतीत होते हैं। हमारे नेता वे लोग हैं, जो सभी परम्पराओं से भाग उठाते हैं। चाहे हम किन्तनी ही अनुप्राप्तियों वाले नाएँ, चाहे हम पुराने मूला को किन्तना ही छोड़ें-मरोड़ें किन्तु उनसे हमें तिनको को फिर नया धर्म देने में सहायता नहीं मिल सकती।



कष्टा मानव

म इस मूल्य धीर उजाड़ से इस सम्बन्धिता धीर सम्बन्धिता से किस प्रकार उजाड़ पा सकते हैं? मूल पाठ में बताया गया है कि हमें उस मानवता का आवाहन करना चाहिए, जो प्रलय के ऊपर ध्यानमग्न थी—सुख की खोज की लाभता। मनुष्य को परमात्मा के समान बनाया गया है जैसी अपनी प्रतिमा के रूप में। विशाल ब्रह्मांडीय मानवता मनुष्य के अन्दर छापी हुई है। वह संसार में एक सक्रिय धीर तोड़कर शक्ति है। कतना उच्च केवल समय काटना धीर सबतर की प्रतीक्षा करना नहीं है। संसार के अधिकांश के अधिकांश ने अब उत्तरे ऊँचे कपार पर ऐम्बियन (इन्फोड का अर्थ नाम) को बेठा या कहा या “हम कांपते हुए यहाँ परमात्मा को हम बना के लिए क्यों पुकार रहे हैं धीर अपने आप को क्यों नहीं पुकारते जैसे कि परमात्मा तिलास करता है ?” परमात्मा के साम-साथ मनुष्य धर्म भी सप्टा है। संसार की योजना एक सहयोगात्मक बुद्धि की योजना है। आत्मा धीर समूह अप्टर धीर दृष्टि एक अकेली अपघ विभक्ति के घोसक को प्रतिबन्ध बदल रही है। धीर विकास की कीटि उठ आत्मा की कीटि

पर निर्भर है जो उस स्थिति पर धिया कर रही है। परमात्मा मनुष्यों की सुखमयी गतिविधि के लिए धामहामी है। मनुष्यों की यह सुखमयी गतिविधि ही वह वस्तु है जो संसार को बधती है और इतिहास का निर्माण करती है। हमें सुखनात्मक उत्तरदायित्व के अपने हिस्से को बहन करना चाहिए। काय प्रियतम तुम धीर मैं मिसकर उसके साथ वक्ष्यत्र रच सकते !” यह परमात्मा के साथ एक सुखा पक्ष्यत्र है जिसके लिए हमारा धामहाम किया गया है। हमारा सुख करके परमात्मा ने हमें कार्य करने के लिए धामधित किया है। हम सम्मता को ईवयोग के धरोसे नहीं छोड़ सकते। हमें अपने-आपको परमात्मा की उस धामना के साथ एकरूप करना होगा जो समुद्र के ऊपर गति कर रही थी। हम स्वयं बिदध की धामना में प्रवेश करना धामा धीर उमका बाहन बनना होगा।



मनन, कष्टसहन और चिन्तन

हम सबकी इस बात में धिचि है कि इस धाम्यवस्था में एक ध्यवस्था रधाधित की जाए, वस्तुधों को सुमध्याया जाए। इसके लिए हम मनन करना होगा जो केवम कष्ट के लिए कष्ट सहना नहीं है। हमें कष्ट-सहन को एक धामिधु धिधि बना लेने की धामधयकता नहीं है। गठ महापुत्र में सालों सोधों ने कष्ट सहा। नधे साध ध्यधितधों ने अपने धामध संधाए। हमम भी नहीं धधिक सोध धाधध धीर धीनी के उपमोध से धिरल रहे। परधु धिम प्रमोधन के लिए ? क्या यह धिनाग उधित धा ? क्या यह संधम सोधेस्य धा ? क्या हमने पहम की धोधेधा धधधी धधधर्राध्ठीव धिधति उधधम करने में महाधता धिती ? हमें धनाधधक कष्ट सहन करने धा हुनाधमा (धुधीध) बनने की सोध में धधधे धार्ग ने धूर जाने की धामधयकता नहीं है। धीर उधित धाय को धरमता के साथ धीर धामधधुधेक कर धाना नधधध हो ठी उधे धैधे धिया धाना

चाहिए। इतना धनस्य है कि हमें सही काम को करने से केवल इसलिये नहीं बचना चाहिए कि हम उसे सरलता से और धारम के साथ नहीं कर सकते। मनन का केवल कष्ट के लिए कष्टसहन के साथ बचना नहीं कर दिया जाना चाहिए, यद्यपि अंसा कि हम देखेंगे मनन में कष्टसहन का तत्त्व रहता है।

मनन केवल विस्तृत भी नहीं है यद्यपि विस्तृत यह है। सुबन के लिए है पहले कल्पना की शक्ति धानी चाहिए। हमें यह मानना होना चाहिए कि तत्पय क्या है और इस बात का भी कुछ प्रभाव होना चाहिए होना चाहिए 'विस्तृत प्रारम्भ में धन्य-यत्' इसका धर्म सम्बन्धित है। सम्पूर्ण दृष्टि विचार का साकाररूप है। जब ताजमहल परा म एक भवन के रूप में बनकर तैयार हुआ उससे पहले धाहवहा मन में ताजमहल का एक स्वप्न विद्यमान था। वार्षिक स्टाइटोड में है 'फाटीबर कोई पत्थर उठकर रखें इससे पहले ही हमारे मन उजापर बना चुके होते हैं और पहले हमारे मन उम्ह नष्ट कर चुके होते उसके बाद ही प्राकृतिक शक्तियाँ उनकी मेहराबों को जीर्ण-जीर्ण करके पराती हैं।' कोई श्री व्यवस्था पहले धारमा में एक कल्पना के रूप में धाती और उसके बाद ही यह इतिहास में एक उपसम्ब तत्त्व के रूप में उपस्थित किया जाता है। जो कुछ किया हुआ है हम उसकी केवल नकल-नर नहीं करते और न जो कुछ पुण्यता है उसकी पुनरावृत्ति ही करते हैं। जो कुछ है हम उनके परे देखते हैं जो कुछ हमारे सम्पूर्ण प्रस्तुत किया गया है हम उसके परे सोचते हैं। हमारे जीवनों में एक प्रवृत्त्य व्यवस्था है जो हममें अपने सम्पूर्ण विद्यमान सीमा और पूरी हो चुकी वस्तुओं के प्रति असन्तोष जवाती है। केवल विस्तृत हमें दूर तक नहीं ले जा सकता। सौपनहावर का कथन है सब कालों के बुद्धिमान व्यक्ति तथा एक ही बात कहते रहे हैं और मुझ विनका कि संसार में बहुत विद्यान बहुत हैं सब कालों में तथा एक

ही तरह से धारण करते आए हैं परन्तु जो कुछ बुद्धिमान कहते रहे हैं उसका जस्टा और इसीलिए बास्तेपर कहा करता था कि हम संसार को ठीक उतना ही मूर्ख और निहृष्ट छोड़ जायें जितना कि यह सब था जब हम इसमें आए थे।" संसार सत्य के अपूर्वात्त ज्ञान के कारण उतना कष्ट नहीं पा रहा, जितना कि मनु के अपूर्व नियंत्रण के कारण, जिसके फल स्वरूप सत्य का अनुसरण करना कठिन हो जाता है। मानवीय काय विचारों और दुर्गचारनामों के आकार पर बसते हैं कल्पनाओं और विचारों के आधार पर नहीं। केवल ज्ञान शक्ति नहीं है प्रीत्यु शक्ति बड़ा है। यदि हम प्रसत्य पर भी विराम कर सें तो प्रमत्या में भी काम बस जाता है परन्तु जगत् केर तक काम बसता नहीं रह सकता। बोलो बिक भोग जीन जात है क्याकि जगत् प्रकृ गक्ति थडा हाती है जिसका सुधारकों और धान्तिवादियों में पर्वात्त माना मे प्रभाव होगा है।

मनम किसी व्यक्ति द्वारा अपने समूह मनु और समूह शरीर द्वारा किया जानेवाला चिन्तन है। यह मनेचित्त चिन्तन है। यह व्यक्ति द्वारा अपने समूह शरीर, इन्द्रियों और इन्द्रियप्राप्तता को मन और बुद्धि को उस विचार से प्रोत्प्रेत कर दिया जाता है। कोई क्रिया या शरीर का कोई ध्य ऐमा नहीं है जो मन या ध्यात्मा के प्रभाव से बाहर हो। मनुष्य एक जीवतत्त्व है एक समग्र वस्तु शरीर मन और ध्यात्मा जिसके समय-मसब रहनु हैं। लज्जती हुई कम्पा के विषय में डोन की इन मुत्तर पंक्तिओं में इस एकता का बचन है।

उसका विद्युत् और बोसता-सा रस
उनके कपोलों में बोसता था और इनका स्पष्टरूप से उतजित था
कि यहाँ तक कहा जा सकता था कि उसका शरीर सोचना था।
मनुष्य को केवल एक बीजिक प्राणी-मात्र समझने की भूम करना

एन एमएल्ले मरु ६ वॉ १ १४४ टोन्स सेवन्स : एनेन ४४२
पृष्ठ १४२।

ठीक नहीं। उसकी बुद्धि उसका सम्पूर्ण अस्तित्व नहीं है। हमें तर्क द्वारा गढ़े गए विचारों को मनुष्य के जीवन की अनिमित्त में पढ़ने और उसके स्वभाव से उठना और प्रकृतियों के समूचे संघ को प्रभावित करने देना चाहिए। सत्य विचार साक्षर बनना चाहिए। मनुष्य के समूचे मनोविज्ञान का इस प्रकार परिवर्तन उसके समूचे अस्तित्व का इस प्रकार का स्थापन एवं इस प्रकार की समेकित बुद्धि ही तुलनात्मक दृष्टि की वस्तु है। जीवन मनुष्य द्वारा अपनी विधि और रहस्यपूर्ण आत्मा और उसके वास्तविक कृत्यों को समझने के लिए किया जा रहा एकान्त प्रयत्न है।

२

जानना और होना (चित् और सत्)

मन और हृदय के विश्वासी तत्वों को केवल आत्मा के एकान्त में ही समस्वर बनाया जा सकता है। संसार में उन लोगों में जो ईश्वर में अपनी बुद्धि द्वारा विश्वास करते हैं और बर्षा (जीव) के प्रथम अनुभव को बुझते हैं और उन लोगों में जो कि अपने सम्पूर्ण अस्तित्व द्वारा परमात्मा में विश्वास करते हैं, बहुत अंतर है। हम सामान्य व्यक्तियों में और सत्तों में भी ठीक यही अंतर है। परमात्मा में विश्वास करना बहुत कठिन काम है। इसको कोई भी नयाक ही कर सकता है। किसी विचार को प्राप्त करना मन की उस प्रकृति प्रकृति को प्राप्त कर लेना नहीं है। सामान्यतया हमारी बौद्धिक आरंभ हमारे वास्तविक जीवन से विनम्रस पूरक होती है। हमारे वास्तविक अहंसा हमारे अचेत लक्ष्य नहीं है। हम प्रयत्न किए बिना केवल किसी उपदेश को सुनकर किसी मंत्र का जप करके किसी पुस्तक का पढ़कर जानी बन सकते हैं यह एक बहुत ही मधुर स्वप्न है परन्तु यह केवल स्वप्न ही। हमें निरंतर चिन्तन द्वारा विश्वास को परिपक्व होने देना चाहिए और उसे अपने ऊपर प्रतिकार कर लेने देना

चाहिए। यह बहुत कुछ प्राकृतिक प्रक्रिया से भिन्न-भिन्न एक बलिष्ठ धीर भाव्य करनेवाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी विचार को सार्वकर्मवाला मन स्वयं उस विचार से भाष्यन हो जाता है।

फिर, पद्मी के प्रति प्रेम हममें से बहुत-से लोगों के लिए एक विचारात् की बन्धु है परन्तु सत्तों के लिए तो यह उनके अस्तित्व का एक बाध होता है। प्रेम के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, उस सबका दुहरा देना आसान है परन्तु अपने साक्षियों से प्रेम करना और उनके साथ सन्तोषजनक सम्बन्ध बनाकर रहना बहुत कठिन है। प्रेम के लिए कल्पना की एक सम्बन्धशील भावना की आवश्यकता होती है और जिन लोगों में कल्पना नहीं है उन्हें कल्पना प्रदान नहीं की जा सकती। प्रेम एक ऐसी कल्पनाप्रधान चेतना है जिसे कि व्यक्ति की अपने आत्मिक एकान्त में निश्चित करना होता है एक ऐसी चेतना जो स्वयं कष्ट सह लेती है और दूसरों के कष्ट को घसट कर अनुभव करती है। यदि हममें इस प्रकार की चेतना का प्रभाव है तो हम 'बन्धु' मानव प्रार्थी नहीं हैं। मन्वा प्रेम समूचे धर्मार्थ की चेतना देण और सम्पूर्ण मानव जाति को स्वदेश-बन्धु समझता है। इस प्रकार का प्रेम एक दुर्लभ आदर है। कारण यह है कि हम काले आदिमियों से पद्मी के रूप में हम सीमा तक प्रेम नहीं करते कि हम उन क्षमता की दया से दूरबाध दे दें। हम गरीब आत्मा की सहायता से इतना बारी प्रेम नहीं करते कि हम उन्हें उस दुःखता से बचाएँ जिसमें कि हम अपनी कर्मों के पड़ जाने की कल्पना-भाव में ही गिर उठते हैं। प्रेम का अर्थ है व्यक्ति द्वारा अपने-पन का धीर धरन प्रयोग का परिणाम। प्रेम दूसरे मनुष्य की आँखों में देखना अपने मनुष्य के हृदय में अनुभव करना और दूसरे मनुष्य के मन के अनुसार समझना है।

यै पद्मी और साहित्य की अनगिनत कथायाँ में एक गुनाया चाहिए है। एक सुन्दर सुबकी जो पाण्डित्य भावनाओं में भरी प्रकृति की एक स्वल्प गुनाया थी एक मुरम्ब सम्प्राप्त में कुछ के लिए उद्वेग म भिन्नो धीर उद्वेग प्रेम बनाने लगी। उद्वेग कुछ आध्यात्मिक मनोदशा में था। उर

मुबती ने उसे टोककर कहा "मुझसे नसबों और सन्तों संघार के कर्णों और सृष्टि के प्रयोजन की चर्चा मत करो। मेरे मेरे उपभुक्त नहीं हैं। मैं तो सोलसाह स्वाभाविक सुखमय और स्वस्थ बीमल में विवाह करती हूँ। रक्त में जो कुछ धनुमृति और विरसाध है मेरे लिए तो वही वास्तविक है। उस सम्भ्याकाल उपमुष्ट बड़ी क्षमिताई से उस स्थिति से छटकाया जाता। परन्तु उसने बचन दिया कि वह फिर किसी घबहर पर उसके पास बसव आया। लम्बे-लम्बे बर्ष बीत गए। सुख और मौज में सम्पत्ति और सौन्दर्य से जीनेवाली वह ठहरी अपने अर्नेतिक परिण के कारण उन सबको संबा देती। अन्त में उसका रूप मट्ट हो गया और वह लड़े हुए मांस का पुंज-भर रह गई, जिसमें बगह-बगह भाग ने जो सड़ रहे थे और जिससे कुण्ठित बुयेव्य बढ़ती थी। जैसे इतना ही काफी नहीं था, वह एक प्रपराव कर देती जिसके लिए उसे यह बड़ दिया गया कि उसके हाथ-पैर काट दिए जाएं। सब लोगों ने अपमानित और विरस्कृत करके उसे गपर के द्वार से बाहर निकाला और जहाँ उसे धंग-भंग का बड़ दिया गया था वही स्थान पर उसे छोड़ दिया। कुछ बर्ष पहले वह एक बीबन से भरपूर मुबती थी परन्तु अब वह निर्बलता और घसहागता के पुंज के सिवाय कुछ न थी। कोई विवाह नहीं कोई धारेश नहीं महाँ तक कि पूर्ण धामकार भी नहीं केवस रिस्तता। वह किसीसे कुछ मेठी नहीं किसीको अपने-आपको छुन न देती, कोई प्रसन्न मुलता न चाहती किसीसे परिचर्या न चाहती। इत प्रकार बिसकुल रिक्त रहकर वह अत्येक वस्तु के मीठर तक बेख रही थी। अब उसे कोई धन न सकना। जिन्हें वह अपने अन्तिम क्षण समझ रही थी उनमें प्रार्थना और भूक रदन के बीच उस उपमुष्ट के साथ हुई अपनी मेट का स्मरण हो आया और अभी उसने एक हकके-से स्पर्श का अनुभव किया। उसन देखा कि एक ओबोत्तर कान्ति और तेज से देवीप्यमान उपमुष्ट उसे बेख रहा है। उसकी धाँको से एक मुकुनार प्रेम का भाव है जैसा कि रण्य पिपु के प्रति माँ की धाँको में होता है। पमुष्ट ने देखा कि उस स्त्री की धाँको से किन्ता ध्यापुलता धाल्यम्मानि और दबा भी बाचना का भाव

जरा था। वह बोली "उपयुक्त जब मैंने देह धमकते हुए लोगों और बहुसूक्ष्म वस्तुओं से सुनोभित्त की और जब यह समय के वृत्त के समान मधुर थी तब मैं तुम्हारी प्रतीक्षा व्यर्थ ही करती रही। जब मैं उद्दीप्त कामला को बना सकती थी तब तो तुम आए नहीं। अब तुम इस बीमार्थ और पुनित्त लोह टपकाने बिह्वन मानसिद्ध का दिक्कत के लिए क्यों आए हो ?" उपयुक्त न पीरे सं उनके बामों पर हाथ केरा उनके सम्पूर्ण अस्तित्व को धाम्नीकित कर दिया और कहा "बहन जो देखता है और ममकता है उसकी दृष्टि में तुमने कुछ भी नहीं संभाया है। दुःखी मग होयो। बिरबाम करो, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। उन सुनों और धाम्नी का ध्यामा की मानता मग करो जिन्हें तुम पा नहीं सकी हो। तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम बाह्य प्रदर्शन पर धाम्नीकित प्रेम की धपेक्षा कही अधिक गहृण है। उमदी धांसे बमक उदी उसके होंठ सुने और एक नई स्वस्वता और हृदय के हनकेरन की मानता के साथ यह उपयुक्त की गिप्या बन गई। यह इस बात का एक और निदर्शन है कि संतों का जीवन बहुमे उनके करिब के पठन से शुरू होता है। किसी कष्ट में पड़ी धाम्नी को बहारा कोई महान धाम्नी हो र सजनी है। ✓

मनुष्य को सदा प्रेमपूर्ण रहना चाहिए और जिन्होंने हमें कष्ट दिया है उनपर भी निर्दय होकर धाम्नीकार नहीं करना चाहिए। जब हम प्रेम करते हैं, तब हमें क्षमा करने का अधिकार नहीं रहना। मने ही प्रेमभाव धिना ही अधिक पठित क्यों न हा गया हो। बरि हम प्रेम करते हैं तो प्रेमभाव बाह्य वृद्ध भी क्यों न करे यह श्रिय ही बना रहेगा। जो लोभ दीनों और धाम्नी को त्याग देने हैं जो धायो मोयों का गिम्नी उड़ाने हैं और धपरापिनी को धपमानित करते हैं और उनकी बिह्वनताओं पर मान-भीहृ सिबाइत है के मन्ना प्रम नहीं करने। बाए गए गए पर और बाए करके तथा पिरे हुए को और भी कुबलकर के पागदित्तिया धाम्नीकित करने हैं। धमनी मनुष्य हममें में बुन में बुने धाम्नी के साथ भी धीरज में काम लेने हैं। ब हमारा इनता धाम्नीकित है कि के हमारी हर धाम्नी को धाम्नी कर सकें। के हमारे लिए धाम्नीकित बहान साथ धिनापने हैं और हमारी धाम्नीकित धपनाकित्य समक-

कर नहीं करते अपितु स्वाभाविक प्रेम के कारण करते हैं। हमारी नीचताओं और दुष्कर्मों को स्मरण न रखकर वे हमें मुक्त भाव से अपना प्रेम प्रदान करते हैं और उसके बदले में कुछ भी पाने की आशा नहीं करते और न उन्हें कुछ देने की ही आवश्यकता होती है। कारण यह है कि वे जानते हैं कि कई बार असाधारणी है किया गया एक ही कार्य सारे जीवन को बढ़ाकर देता है और कोई एक ही अधिवैक्यपूर्ण कृत्य सारे कुटुम्ब के लिए सज्जा का कारण बन जाता है। यदि कोई उदार स्वभाव उपलब्ध या उनकी ओर आकर्षित न हो तो साहचर्यात्प्राप्त मुक्त और भर ही जाएं।

६

धर्म की कीमत

हममें से अधिकांश लोग धर्म को ऐसे आसानी से संभाल लेना चाहते हैं जैसे हम समुद्र के किनारे पड़ी लीपी को उठा लेते हैं। हममें अध्यात्मतापूर्वक सोच करने का धीरज या धैर्य नहीं है। जैसे हम पुस्तकों की दुकान से पुस्तकें लेते हैं, सुर्ती पालनवासे से सब लेते हैं या बवाई बेचनेवाले से बचाइयां लेते हैं, इसी प्रकार हम उपदेशक या पुरोहित से आशा करते हैं कि उससे हमें कुछ रपय या प्रति सप्ताह एक पंटा देकर धर्म प्राप्त हो जाए। परन्तु धार्मिक बनने के लिए तो बहुत काफी मूल्य चुकाना होता है। जब से मानवीय प्रयत्न प्रारम्भ हुआ है तब से ही विचारों और प्रयत्नों को वास्तविक रूप देना करना काम नहीं रहा। ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जिसका धारण के महान लाभनुसार कुछ भी समझा रहा हो। उसके पास राम्य या धर का और सोच का लभने योग्य सब प्रकार के सुख उसे उपलब्ध थे। उसे अपने-आपको इन मय सुर्तों से विरक्त करना बड़ा उम सुर्तों को धम्बीकार कर देना पड़ा हृदय की बढेरता के कारण नहीं अपितु सात्य के प्रति प्रेम के कारण। केवल इस प्रकार वह अपनी आयेगपूर्ण प्रकृति पर विजय पा मरा और अपने-आपको

संसार के लिए एक दर्शन बना सका। ईसाइयत द्वारा निरभिमानता के निमित्त धार्मिक व्यक्ति पर आरोपित किया गया मानवता के कष्टों का उपयोग प्रत्येक व्यक्ति के लिए केवल हम तथ्य के कारण था पड़ा है कि जगत इस संसार में जन्म लिया है। या कोई हम कर्मव्य को समझता है धीर हमें पूरा करता है भले ही जग इसकी कोमत परिमल कष्टसहन धीर अपने स्वयं द्वारा चुकानी पड़ती है। वह सुखी है।

७

निरी द्वास्तिप्रियता की निष्फलता

आज हम उच्चतम पर्वत-शिखरों पर या पृथ्वी के दक्षिण धोरों पर भ्रमण करने के लिए तो परिमल करने धीर कष्ट सहने के लिए तैयार हैं परन्तु उन विचारों के लिए नहीं जिन्हें कि हम स्वयं अनुसरणीय मानते हैं। हममें से घनेक सोम यह समझते हैं कि हम द्वास्ति के लिए तैयार कर रहे हैं। हालांकि द्वास्ति की कामना केवल एक पवित्र धीर सुख की महत्वाकांक्षा है एक सुखसा धीर दूरस्थ विचार वह कामना एक ऐसा उद्यमस्थ विरहाम नहीं है जिस बनाए रखने के लिए हम अपना रक्त धीर जीवन देने का तैयार हों। विदास्ति का धीर एक ऐसी वस्तु है जिसके लिए हम मारी जीवन चुकाने को तैयार हैं। धर्म की समृद्धि के प्रति हममें जिज्ञासी द्वास्तिप्रियता की भावना है। सतनी द्वास्ति धीर द्वास्तिप्रियता महत्वाक के लिए नहीं है। मानवता के प्रति हमारा प्रेम इतना तीव्र नहीं है कि वह वेग के प्रति हमारी कटुता पर विजय पा सके। हमें रक्त की कुछ दानि के लिए, या तेष क सुखों के लिए जन-समूहों का विनाश करते कोई हिचक नहीं होती। यह सोचना समझना-मान है कि राष्ट्र सब इतने बुद्धिमान धीर प्रबुद्ध हो गए हैं कि सब धाने मुक्त नहीं होंगे। यह वह रेत है जिसमें हम अपना मिर मड़ा रहे हैं। यह महापुत्र (शब्द विरहमुत्र) में यह देना क्या था कि जन

साधारण में बुद्धिजीवियों की अपेक्षा कुछ अधिक संवेदनशीलता थी। यह सब इसलिए है क्योंकि हमारा विचार बिलकुल ऊपरी होता है। हम विचार नहीं करते क्योंकि हमें डर लगता है कि कहीं वह हम बहुत महंगा न पड़े। वह हमारी प्रायोजनाधीन और योजनाधीन का छलट-यसट कर सकता है। हम केवल बही करते हैं जोकि वृत्तव्य व्यक्ति करता है। भीड़ का बनाव बुनियाद होता है। मध्यमवर्ग के वर्चस्वियों पर अत्याचार करता था अत्यन्त बन्धी मुद्राप्रिय देशमन्त्र करते हैं। कुछ बोझे-स घाम्बोसनाकारी और पुम्बाहसी लोम समाचारपत्रों और रेडियो पर नियन्त्रण करके कानून बनाते हैं और बनसमुदाय बिना विचार किए अपनी मूर्खु की घोर कृप करता बना जाता है। हमारे संकल्प हमारे मन हमारे अपने नहीं हैं। हमारी अपेक्षा अधिक बलशाली एक यन्त्र में हम सबको अपना पुर्जा बना जाता है। हम सब बहनों को पहनते हैं, जो हमारे मांस के अन्दर तक पैठी रहती हैं। इस्पात की निरसम्भता हमारी मूर्खों की भावना को घना लेती है। हम लम्बों को उनके लही रूप में देख नहीं पाते। विद्वय को इतना ब्राह्म बना दिया जाता है और उसे इतने आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया जाता है कि हम उसमें आतन्त्र लेने लगते हैं, चाहे हमें उस वस्तु का कुछ ज्ञान ही न हो त्रिमये कि हम कृपा करते हैं। यदि हम इतनी काफ़ी बुधा नहीं करने कि हम हत्या कर सकें तो हमें कायर कहा जाता है। जिसे अनुपासन कहा जाता है, वह हमारे सामने यह विकल्प प्रस्तुत करता है कि या तो हम माँ पर जाएँ या फिर हम अक्षय्य मार डालें जाएँ अबकि मोर्च पर जाने की जगह में इस बात की केवल सम्भावना-भाव है कि हम मार डालें जाएँ। हम जोलिन उद्य लेते हैं धीरे साहसी होने का भय प्राप्त कर लेते हैं। हम अपने अस्वधारी बन्धुधों की मूर्खु की कामना करने हैं और अर्थों की नाति डेप के बिना उन लोगों की हत्या करते हैं जिन्हें हम जानते तक नहीं और जिनके प्रति अक्षय्य के लिए हमारे पास कोई भी कारण नहीं होता। मुद्रनातीन अनुपासन के भयंकर अंगुष्ठ में जो अनुप्य को विचार करने को कहा करता है कहने का हम अक्षय्य हत्या करते हैं क्योंकि हमें अपने

मिसा है, इसलिए नहीं कि हमें बैसा विश्वास हो गया है। हम इतने बीर तो हैं कि कष्ट सह सकें घोर दुःख को स्वीकार कर सकें। परन्तु इतने बीर नहीं हैं कि अन्धविश्वास के लिए कष्ट सहने से इन्कार कर सकें। हम अपने प्रतीकों के लिए, व्यापार सम्पत्ति साम्राज्य के लिए युद्ध करते हैं उन प्रतीकों के लिए, जो पुराने पड़ गए हैं घोर निष्पाम हो चुके हैं। हममें इतना साहस नहीं है कि हम उन पुराने प्रतीकों को उन बिखी-पिटी परम्पराओं को उगार फेंकें जो हमारे लिए बेड़ियाँ बन गई हैं। हम उन्हें इसलिए उगारकर नहीं फेंक पाते क्योंकि सतत सिद्धा की प्रक्रिया विद्युत् पाट्टामासों न ही मुक्त हो जाती है। परम्परा घोर बीरतावाधों के प्रति व्योक्तिपूर्व बलम तथा मित्रा के सब सभ्य प्रभाव घटाश्रितों से स्वतन्त्र प्रमुख-सम्पन्न राज्यों के वीरुत्पाम की धार तथा अपने राज्य के प्रति निष्ठा की सबसे भीषी अभिव्यक्ति के रूप में राज्य राज्यों के समन की घोर प्रेरित निग आते रहे हैं।

वे घाटपट पुरस्कार, जो युद्ध में राज्य समानेवालों को मिलते हैं युद्ध की लड़क-झड़क उमरों बीरत्व घोर घातमबलिदान से बस्तुतः घब भी दोम मानवता के नेत्रों के सम्मुख बिल्लों घोर बदलों की बमक द्वारा किशों घोर समगों की भल-भलाहूट हाथ घोर विजय-ओरला तथा धनिक-अदरीनों द्वारा घातार्थक रूप में प्रस्तुत की जाती हैं। प्रतिघम घोर परम्परा के द्वारा हमें दूसरों से पूजा करव की प्रेरणा दी जाती है। ऐसी पूजा जो हमें घोर हमारे विरोधियों दोमों का गा जाती है। राष्ट्रपान के दूसरे पक्ष के पक्षों से घातमजातीय समाजों के उभ नीतिगतत्व को धरनाया गया है, जिसे समझ जाता है कि हम छोड़ चुके हैं। जब विद्वेष का रस्य हमारा हारी हो जाता है तब हम उतेजनापीत युद्ध घोर घातमपूर्व विजयाँ वीरुत्पाम के शूरपक्षों की घाति युद्ध के पक्षों में उदेक दिए जाते हैं।

समूचे मन का परिवर्तन

हमारे अपने अन्तर विश्वमान प्रकाश के अनुसार जीवन बिताने से इन्कार करना वास्तविक पाप है। अपने प्रासवाह के जनसमुदाय के विचारों के अनुकूल जीवन बिताने से इन्कार करना बड़ पाप है। हम बड़ पाप से बरते हैं और इसलिए वास्तविक पाप करते हैं। मनुष्य का कर्तव्य यह है कि वह अपने अन्तर विश्वमान प्रकाश को प्रमाण माने और यदि आवश्यकता हो तो कर्तव्यों का विरोध करे। क्राइम के लिए पहली आवश्यकता यह है कि भ्राम्यकारी के साथ विचार किया जाए। अन्ततोगत्वा मनुष्य एक नैतिक प्राणी है और सामान्यतया वह तब तक मुड़ नहीं करेगा जब तक कि वह मुड़ नैतिक प्राणियों पर उचित न दखता हो। वह बड़े लुप्त उद्देश्य की बातें करता है। बैम संसार को प्रभावित के लिए मुदितित बनाना अपने घर-घारे की रक्षा करना अपने काम-कर्मों का बचाव करना और सबियों की अधिकता को बनाए रखना इत्यादि। भय और अनिमान, मन ही-जासना और सत्ता की इच्छा इन वास्तविक उद्देश्यों को सिनाया जाता है। मुक से ही मनुष्य के अधिकार कर्त्यों का कारण मनुष्यों की बुद्धता उतनी नहीं रही बितनी कि मनुष्यों की मूर्खता। जाहुरतियों का इसलिए यत्न ही जाती थी क्योंकि हमसे यह अपेक्षा की जाती थी कि हम उन्हें जीवन के संकल से बचाएं। ईसाइयत में विश्वास न करनेवाले लोगों का इसलिए पीठे-पीठे बना दिया जाता था क्योंकि उन्हें अन्त काल तक नरक की मन्त्रणा से बचाने का एकमात्र नही उपाय प्रतीत होता था। हम बहुत बड़े पैमाने पर हत्या का आयोजन करनेवाले लोगों का समुपभन इसलिए करते हैं क्योंकि हमें यह समझ दिया जाता है कि न्याय और सत्यता की रक्षा करने का एकमात्र उपाय नही है। हमारी अन्तम कूटताएं हमारी ब्यामुता की अधिष्पतितया प्रतीत होती हैं।

अब मैं लफलाता का धर्म सत्य की विषय नहीं है। यह लोचना वैसा

भ्रम है कि यह सिद्ध करने का कि हम नहीं हैं एकमात्र उपाय यह है कि हम विरोधी पक्ष के यथामुम्भव अधिक से अधिक मार्गों का समाप्त कर दें। हमें युद्ध की विभीषिकाया को अनुभव करना चाहिए। हमें समझना चाहिए कि युद्ध मूलतः एक प्राकृतिक बस्तु है सम्पूर्ण मानवता सत्कृति और भाग्यपार्थों को तिस्रोत्रिभि। इसके भीतर हमारी गीत उपजे हैं। प्राकृतिक दशाओं में युद्ध केवल गमती ही नहीं अपितु घपराप है। यह क्योंकि किचों और राष्ट्रपत्तों का स्वान सामाजिक पदाओं में समाया है। इसलिए बिनाय मार्गभौम हामा और मतिका तथा घमतिको में पुरपां मित्रियों और बल्ल्या म बार्द भद्र नहीं किया जाएगा।

शास्त्रप्रियता एसी बस्तु नहीं है जिसे कि राष्ट्रगण (सीग फाँट नेगम्स) में खरीदकर लिया जा सके। मानव-जाति की नैतिक बढ़ता पर बिजय पानी होगी। जनसमूह को घायाचार का विरोध करन का सामर्थ्य सरलता से प्राप्त नहीं हो सकता। हमें शास्त्रप्रियता के बिचार का एक बूढ़ बिरबाम में रूपांतरित करना होगा और उसका अनुसार जीवन-याग करन के लिए सहम और घायेघ प्राप्त करना होगा। दूसरे शब्दों में हमारी केवल बुद्धि नहीं अपितु हमारा सम्पूर्ण चेतना को इस कार्य में समाया जाना चाहिए। हम अपने सम्पूर्ण शरीर और मन में घपना अनुभूतियों और सहजवृत्तियों में घपनी देह और इनकी प्रवृत्तियों में शास्त्र

१. आस्मार्थी बुद्धिमिती बुद्धिजन ने १ बरसी १९३३ का एक विद्वान लया में एक पूरे राष्ट्र-विचार के परबन्ध १२३ के विरुद्ध १७१ बार्थे से वह प्रकृत्य वन विवा कि वह शासन किमी भा दशा में करने राज्या और देश के निरनुद्ध नहीं बरगा। बुद्धिजन के सम्बन्धित ने 'यू स्टेट्समन बर १ जेरन (१९ बरसा १९३) में एक लया में इस लया का सम्बन्ध किवा कि बुद्धिजन ने वह निरनुद्ध विवा है कि 'युद्ध को समाप्त करने का लयम प्रकृता ज्ञान यह है कि किमी में काणामी युद्ध में प्रकृते स्वयं स्वयंका' जगता विरोध को। मैजिस्ट्रर बर्दिन वर ग्नाक्यो का बुद्धिमिती बुद्धिने भी हवा निरुद्ध पर बरथे। वैमर घट बुद्धि या निरनुद्ध युद्ध की मित्रा और स्वयंका जगता मरकन करने है विरनुद्धिवाचन के द्वाये के हम उद्धत ग्नाहम स र लदगा बट।

के लिए दृढ़ संकल्प करना होगा। साम्प्रदायिकता के प्रति केवल बौद्धिक निष्ठा उन अचेतन संवेगों के विरुद्ध असह्यम रहती है जो हमारी चेतना को वास्तव में जकड़े रखते हैं। हमारी बंध-परम्परा से बली या रही भावनों और संस्कारों तथा हमारे व्यक्तिगत दृष्टिकोणों और आबुद्धताओं के मध्य मन्दर बहुत बड़ा है। हमारी अचेत इच्छाएं दृढ़ता से बद्धमूल सहजवृत्तियों का विरोध करती हैं और इस प्रकार हमारे अपने व्यक्तित्व को प्रकट नहीं करतीं। जो उक्त है कि हमारी बुद्धि मूल को पुनर्जावनक और मानवता से असंगत समझती हो परन्तु हमारी मूल्य प्रकृति को मूल को स्वाम्य समझना होगा और वह भी इस सीमा तक कि हम अपनी प्रकृति पर आस्थाधार करने के बजाय कष्ट और अकेलापन सहन करने को उद्यत रहें। इसका अर्थ कबल अपने दृष्टिकोण को ही बबलना नहीं अपितु अपने मनी-वेगों का पुनर्गठन करना है। हमें संसार के सम्बन्ध में मानवियों की आशाओं की दृष्टि से नहीं अपितु नर-नारियों की दृष्टि से सोचना-सुचना करना होगा। मने ही हम धर्म्य व्यक्तियों की आबुद्धताओं को संपीकार कर को तैयार न भी हों तो भी हमें धर्म्य व्यक्तियों के दृष्टिकोण को समझने बस्तुओं को दूसरे व्यक्ति की दृष्टि से देखने की कल्पना के अम से बचना न चाहिए। वास्तविकी के एक माटक में एक पात्र कहता है "यदि मुझे केवल एक ही आबुद्धता करनी हो तो वह यह होगी कि प्रभु मुझे समझने के शक्ति प्रदान करो।" धर्म्य जातियों और धर्म्य लोगों को भी मने ही किन्तु ही विच्छेद हुए क्यों न हों समान रूप से पनपने का अधिकार है वास्तविकता में उनका भी स्थान है। वे धार्ये की धोर भावा में हमारे सार्थ वीर्यवाही हैं जो अपनी परिस्थितियों का असाधमूल अन्धे से अन्ध उपयोग कर रहे हैं। हममें से प्रत्येक मानवता के स्वास्थ्य और सुख के ग्यासबरे है। इस ग्यास के महत्त्व के सम्बन्ध में चिन्ता कहा जाए, कम है और वह ग्यास हमारे ऊपर वह शिम्बारी बाध देता है कि हम धर्म्य लोगों की बुबलताओं को सहन करें और कठिनायों पर विजय पाने और संसार में साम्प्रदायिकी स्थापना करने में एक-दूसरे की सहायता करें।

६

योग

एक भारतीय उक्ति है कि सर्व पृथ्वी की ब्रह्माण्ड है किन्तु सर्व स्वर्ग के पुत्र हैं। मन्द बुद्धि में उत्पन्न हावे हैं और कम भावना में। वह बन्तु यथा ही है जो पत्तों तक जो हिमा सकती है। यथा मंस्य की एक कृति भारता की उक्ति और सम्पूर्ण आत्मा का प्रतिभाजन है। यथा में हम केवल अपने मस्तिष्क द्वारा विद्याम नहीं करने अपितु अपनी सम्पूर्ण आत्मा और घरीर द्वारा विद्याम करते हैं। इसमें विचार का केवल चिन्तन नहीं किया जाता अपितु वह जीवन और मन की सम्भीरण तर्कों में से निवृत्त कर कर धाता है। हिन्दु योग प्रकरण ही ज्ञान को धार्मिक उपलब्धि के समकक्ष नहीं मानते। वे विचार, जिनमें हम गिनवाड़ करते हैं आइम्बर मात्र हैं। वे सूक्ष्मज्ञ और स्पर्शज्ञ हैं और यदि उनका सूक्ष्मज्ञ बनना है तो उनकी उच्च जीवन में समीचीन चाहिए। जो धारणा प्राप्ति के माध्यम और सुखाव हमारे सामने मडराने रहते हैं हमें उनको अपने ऊपर अधिभार करने देना होगा उन्हें हमपर सामन करने देना होगा उन्हें हमें अपने को कपालस्थित और पुनर्निमित्त करने देना होगा हम अपने प्राणों उनके द्वारा पकड़ा जान देना और गहरा जाने देना होगा तब तब जब तब कि हम उनकी जीती प्राणों प्रिया न बन जाएं। अधिभार मात्र में हमारा बन्तुओं के साथ सम्बन्ध नहीं होता अधिन केवल उच्च शक्तों के साथ सम्बन्ध होता है जो उनका बाधक है। हम उनका साथ ल्वात्म होकर उनपर मनन करके उन्हें सप्राण बनाने हैं। केवल मनन और मत्सर्व ही सम्पूर्ण सूक्ष्मज्ञान है। हम केवल आत्मसूत्र द्वारा प्रचुर वैयक्तिक सम्पन्नता द्वारा संसार का पुनर्निर्माण कर सकते हैं।

यह मात्र मनन ही करने का नहीं अपितु सुनने रहने का भी प्रयत्न है केवल प्रार्थना करने रहने का नहीं अपितु वैयक्तिक प्रीया करने का भी। ज्ञान (ईशान प्रमथीन) ही प्रकार से निष्ठा है "मे घटना सूक्ष्मता

हूँ और तेरे घाटे के लिए लासायित हूँ।" घाटे के बस लम्बी मुना जा सकता है जबकि हम अपने अस्तित्व की ऊपरी तटह से डूबकी मारकर उसकी पहुराइयों में पहुँचें और जीवन की पूर्णता से घिरा लें। योप की पद्धति हमें प्राणित घोर घ्याग का पदमम्भन करने को कहती है। पास्कर न टीक ही कहा है "यदि मनुष्य केवल किसी तरह अपनी बीठकों में प्राणित से बीठे रह सकें तो संसार में होनेवाले अघिकास उपग्रह कमी हों ही नहीं। पूजा भी एकान्त प्राप्त करने का एक साधन है। परन्तु आरक्त के इन दिनों में घ्याग बीठना घकेसे रहना भी बहुत कठिन हो गया है। हम एकान्त से बच निकलने के लिए उपाय लोजते हैं जैसे खलना घोर मधिरा-नाम करना घिघात घोर घुराघार करना।

योप का घम्यास उम रूप में बीछा कि घाबकल भारत घोर घुरोप में बहुत-सी लोच करते हैं एक घ्यामाम के रूप में या सामान्य जीवन की प्रधियाघों को सबब बनाने के साधन के रूप में या मृत्यु पर बिजय पाने के लिए घयवा आमतदारिक अकितिया प्राप्त करने के लिए करना पर्याप्त नहीं है। योप का उद्देश्य घ्याग का एकीकरण है जिसे हम घ्यातरिक पुनर्जन्म भी कह सकते हैं। इसका उद्देश्य घ्याग का समेकन है घनात्म का घ्यातीकरण उन घनेक तत्त्वों का समन्वय करना जिनकी प्रवृत्ति स्वतन्त्र विघारों में बह जाने की होती है। यदि नीच पक्की न हो तो पमगर बधिया मकान नहीं बनाया जा सकता। यदि नीच मजबूत हो घोर घाघार बूब बहुर घोर बूड हो तो उसपर दीघारें घोर लम्बे लड़े किए जा सकते हैं। जो बातें घटित होती हैं उनमें से हमें घपनी घेतना के उपघुन विघार को घुन लेना चाहिए घोर घपने-आपको घुरी तरह उन नई पद्धति में मगा लेना चाहिए। प्रत्येक अकित जीवन क विघय में एक कमाकार है उसे जो घामघी प्राप्त होती है, उसके घनुघार बहु घपने जीवन का नमुना स्वयं तैघार करता है। हम उसे बनात् किसी घम्य रूप में नहीं बाल सकते। हमारे घम्वर एक घन्तनिहित रूप या घाघर्य 'डाइमोन' है जिसे हमें लोजना घोर विकसित करना है। बब मनोबिस्लेपक हमने

बहुता है कि हम अपनी सूची हुई स्थितियों अपनी अज्ञान इच्छाओं को शोच निकालें और अपने अन्दर काम कर रही सुप्त शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करें और अपने-आपको वास्तविकता की माँगों के अनुसार काम करें तब वह हमसे अपनी वास्तविक प्रकृति को आसक्त करने और हमारे अपने सब मनाबपों को उस सच्ची प्रकृति की अधिष्ठाता के सापनों में समाहित करने को कह रहा होता है। अब तक मनुष्य अपने अन्तर्निहित स्वभाव का नहीं पहचान लेता तब तक वह पूरी तरह स्वयं नहीं जानता। हमसे मैं प्रत्येक मनुष्य एक ठारबाछ की भाँति है। जिसमें मैं तब तक छिपे मपीन नहीं निकलता अब तक कि तारों का तनाव बिलकुल नहीं ब हो। हममें मैं प्रत्येक को निरन्तर अन्वेषण और समंजन द्वारा अपने सही तनाव को प्राप्त निकालना होगा। मान का उद्देश्य धारण की शोच और सम्भ्रमता का अन्तर्गम है। मान की पहली मान यह है कि नारे जीवन को एक सामिप्राय सम्भ्रम बन्धु बनना चाहिए और जीवन का प्रत्येक तत्व धारणा द्वारा स्थाने जाना चाहिए।

व्याप्त मनोविज्ञान मानवीय मन को एक सम्भ्रमता मानता है। परन्तु यह धारणा नहीं कि हर सम्भ्रमता एक श्रमायी या नमस्वरता मी है क्योंकि यह सम्भव है कि उसके अन्दर विमर्शकारी तरह विरोधी मनोव्यवस्था और धारणात्मक तनाव हों। फिर भी सम्भ्रमता के लिए धारणात्मक मान का प्रकट करना है कि जिस प्रकार प्रत्येक बन्धु प्रत्येक अनुभव एक सम्भ्रमता का इत्य है और जिसी मोमा तब वह उस सम्भ्रमता की प्रकृति का बन्धु देता है। यदि वह व्यक्तिओं का एक ही प्रकार के अनुभव में मैं सुझाव जाण, तो सम्भव है कि उन दोनों की प्रतिविम्बित धारणात्मकताओं में हो क्योंकि उन दोनों की सम्भ्रमतात्मक मन्त्र है। धारणा एक गतिव सम्भ्रम बन्धु है एक इतिहासात्मक प्रतिविम्बित विमर्श परिणाम यह जाना है कि जीवन के अन्त-अन्त कालों में एक ही अनुभव का एक-आ महत्त्व मही रहता। सम्भ्रमता विभिन्न तन्त्रों का संभव या योग नहीं है परन्तु एक मनुषी बन्धु है जो सामिप्राय और सामंजस्यनुभव है। हमारे मन में

सम्पूर्णता के बटक तत्त्व अव्यवस्थित धीरे स्फुरहित होते हैं धीरे उनको अनुप्राणित करने एक महत्त्व प्रदान करने की आवश्यकता होती है मानो यह धातु है जो उन विभिन्न तत्वों को जो अपने-आपमें निरर्थक हैं मिलाकर एक सख्तोपवनक रूप में उसी प्रकार बान लेती है जैसे कि धूल-धूलग ध्वनियाँ मिलाकर एक राग बन जाती हैं। तब जीवन सुतीव्र धीरे व्यवस्थित बन जाता है धीरे एक स्वर केन्द्र के चारों ओर प्रबल ध्वनि के साथ बहकर काटने समता है, जिसमें से तब धीरे समस्वरता प्रकट होती है। इस अनुपान के विगड़ पाने का धर्म है तब धीरे समस्वरता का दृष्ट धामा।

जीवन में विफलता के मानसिक धीरे धारीरिक स्वास्थ्य वर्ग के सबसे अधिक कारण बटित होनेवाले कारणों में से एक यह है, जिसे मनोवैज्ञानिक घन्टाईन्द्र कहते हैं। हमारे चेतन कर्तव्य धीरे हमारे चेतन के बीच चेतन में बहुराई तक पेटा हुआ एक विरोध विधान रहता है जो अपने-आपको कुछ दूषित भावनाओं के रूप में प्रकट करता है। मानसिक विविधता को धारण की महान देन उसका यह विचार है कि संसार में अधिकतम कष्ट का कारण इस चेतन घन्टाईन्द्र में दूषित जा सकता है धीरे उस कष्ट को इस घन्टाईन्द्र को अनुभव करके धीरे इसका समाधान करके समाप्त किया जा सकता है। जब व्यक्तिब विवक्त धीरे विविध रहता है, तब कोई प्रभावी काम नहीं हो सकता धीरे न धानन्द ही प्राप्त हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे चेतन एक ही दृष्टि रहे हमारे मुक्त विचारों धीरे प्रकट दृष्टियों में अनिष्टम अनुपानता रहे। हम अपने मुक्त मनोवैशेषों धीरे यही दृष्टियों को धामानी से नहीं जान सकते। यदि हम अपने-आपको धीरे-अच्छात वा अच्छोप-विश्रुत के लिए न करें, तो हम अपने-आपको प्रकट नहीं सकते। यह मार्ग चाहे कितना ही कठिन क्यों न हो, फिर भी नियम मार्ग यही है। धर्म उतना प्रार्थनाओं धीरे कर्मकारों से नहीं है, जिसका कि प्राप्तधर्मार्थ ही उच्च-मार्ग-परिणामों में है, जो अपने धर्म का नियमन करने धीरे अपने

अधिराज का निर्माण करने में हमारी सहायता करती है। इसके द्वारा हम अपने विचारों को स्वच्छ करते हैं अपने मनोबलों को मृदु करते हैं और धामा के बीज का पनपने देते हैं। वस्तुओं का छान्ति में पनपने देना (गीता के शब्दों में कम में धरम) ही योग है। यह सज्जन विचार के हस्तक्षेप के बिना धामा का विकास है। यह विकास एक स्वाभाविक वस्तु है हमारी माधारण अधिराज्यता और फिर भी यह सबसे बड़ी वस्तु है क्योंकि हमारी चेतना सदा धामतरक की सरस उन्नति में हस्तक्षेप करती रहती है और उसे सुधारती रहती है। इसलिए हम उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अधिराज्य माधना की आवश्यकता होती है। ज्येठों ने कहा है "ज्ञान तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि मनुष्य अपने-आपको उसकी प्राप्ति का दाम न बसा ले।" हमें किसी एक विचार को पकड़ना होगा उसपर अपने ध्यान को एकाग्र करना होगा अपने मन से अन्य सब वस्तुओं को हटा देना होगा और उस विचार को अपने मन में स्थिर करने के लिए अपने सब मापनों का उपयोग करना होगा। हम उसे बागड पर लियें उसे दुराय बनाए, उसका जित या रेखाचित्र या मूर्तियां बनाए, यहाँ तक कि वह हमारे अचेतन में बैठ जाए और हमें समुप्रासित करने लगे। हमारे प्रयत्न को निष्ठा ही हमें तब तक धामे से पाती रहेगी जब तक कि हमारे अन्तम और अचेतन के समन्वय का सत्य प्राप्त न हो जाए यहाँ पहुँचकर हमारा सम्पूर्ण अस्तित्व एक ही विचार से भर उठता है और हमारे जीवन को एक धर्म और एक धर्मरङ्गु प्राप्त हो जाता है। अपनी विविध अधिराज्यता के प्रति धामा की एक गाम तरह की महत्त्वमीलता गहराई तक पैठनेवाली प्रायना गम्भीर किन्तु धोरमत्संग द्वारा धामे जीवन को धर्म-धर्म स्वच्छ करने में उत्पन्न होती है। जब धामा धामे अज्ञान को पहचान लेती है तब इसका अधिराज्य सत्य जीवन की शक्ति द्वारा पुन बल जाता है। उसका ज्ञान यह जीवन की महत् पर अधिराज्य धाम से नहीं भटवती रहती अपितु धामनी गिणा या बुद्धन के बाद यह धाम से जीवन-धापन वासे हुए भी आरक्त मुक्तों के लिए जीती है।

१०

तपो ब्रह्म

जो बात व्यक्ति के विषय में सत्य है, वही समुदाय के विषय में भी सत्य है। संसार की बिसंबादिताओं का राजनीति में बिचारों की प्रव्यवस्था का नीतिशास्त्र में प्रमापों के गढ़बढ़भासे का मूलभूत कारण समूचे मनुष्य के संस्कार की अपेक्षा करके उसका बौद्धिक विशेषीकरण है। हम सत्य के किन्हीं बिशिष्ट अर्थों का उस असीम सत्य के साथ सम्बन्ध करने में प्रसन्न रहते हैं जो यद्यपि बुद्धि की भाँसों से दिखाई नहीं पड़ता पर फिर भी वह हमारे लिए इतना महत्वपूर्ण है कि हम उसके लिए सड़ने और मर बिटन के लिए तैयार रहते हैं। यदि हमें एक अर्थहीन संसार में पड़ी नहीं भटकते रहना तो हमें अपने सामाजिक जीवन के परस्पर-विरोधी मनोबेशों में मेल करना होगा। मानवीय व्यवहार के लिए एक सड़क कोजने में मानवीय मन के उच्चतर प्रयत्नों के लिए एकता स्थापित करने में सर्वम और धर्म यथार्थ बिकारों की अपेक्षा हमारे लिए कहीं अधिक सहायक है।

सर्क नहीं अपितु मनन से याचना नहीं अपितु उपासना से व्यक्ति के अस्तित्व का विस्तार, उन्नयन और कर्पांतरण होता है और इस प्रकार संसार का पुनर्निर्माण होता है। धार्मिक बन्ध करके और अपने अन्दर देखते हुए, बितन या मनन द्वारा हम अपने धार्मिक स्वभाव को बदलते हैं। स्वयं अपने धार्मिक धारम में ही प्राप्त किया जाता है या बंधाया जाता है। हम मनन करते हैं और निर्माण करते हैं। हम अनुप्राणन करते हैं और मुञ्जन करते हैं। परमारमा न समुद्र पर मनन किया जा और जीवन को उत्पन्न किया था। मनन मुञ्जतधीस ऊर्वा है। तपो ब्रह्म।

बीषा व्याख्यान *

कष्टसहन द्वारा क्रान्ति

१

धर्म और परलोकपरायणता

यहाँ मैं 'एजेन्डिया' के इक्कीसवें अध्याय के छम्बीसवें पद्य पर विचार करना चाहता हूँ। "मैं इसे उमट-भसट करता रहूँगा उमट-भसट करता रहूँगा उमट-भसट करता रहूँगा और यह तब तक रहेगा ही नहीं जब तक कि यह न भा जाए, जिसका कि यह अधिकार है और तब मैं इसे उसे दे दूँगा।"

यह कहा जाता है कि धर्म विनय और निष्कमला की नीति का प्रचार करता है। यह परमात्मा और व्यक्ति की अपनी धारणा के बीच का विषय है और इसका संसार से सम्बन्ध बहुत कम है। धर्म उस तपस्वी को ऊँचा करता है जो हमसिए संसार से दूर भागता है, जिससे वह अपने परमात्मा के साथ एकता में रह सके। हम ऐहिक जीवन के संश्लेष द्वारा शारीरिक जीवन को पाने का प्रयत्न करते हैं। एक तरह विचारक ने कहा है "इह लोक और परलोक एक पति की दो पत्नियों के समान हैं—यदि वह एक को प्रेम करता है तो दूसरी वाली ईर्ष्या में भर उठती है।" परमात्मा और मत्सर के मध्य हम दुःख संघर्ष के प्रति हम दुःखीय के कारण धर्म के विरुद्ध यह अधिकार मजाने का प्राणारविण जाता है कि यह एक प्रहार की अनौचित्यमित्त धीपथ है जिसका उद्देश्य हमें हम मत्सर के वर्णों के प्रति उदासीन रहने के लिए विद्या जाता है। यह कहा जाता है कि धर्म

१. डे-वेल्डर कावेन पीपल सन्स, ई. ए. डूर १९१० को लिख गद्य प्रकाशना।

एक सुविधाजनक उपाय है जिसे सम्मान लोगों ने गरीबों को मरीची में पधिलितों को भ्रमान में पापियों को पतित दशा में रखने के लिए और जनसाधारण को अपनी दासता की बधा से सन्तुष्ट रखने के लिए आविष्कृत किया है। मार्क्स और उसके बाद के समाजवादी विचारकों ने यह कहा है कि इनका मुख्य उद्देश्य इहलौकिक है।

२

हेगल और मार्क्स

इस दृष्टिकोण के समर्थन में कि सामिक दर्शन में जीवन का दिग्दर्शनवादी दृष्टिकोण निहित है हेगल का प्रमाण दिया जाता है। हेगल की दृष्टि में तर्कशास्त्र "परमात्मा का उच्च रूप से प्रतिपादन है, वैसे कि वह सत्ता और मनुष्य की दृष्टि से पहले से अपने शास्त्र रूप में विद्यमान है।" यह कालरहित अनिर्धार्यता की व्यवस्था के रूप में विचारों का विद्यमान है, ऐहिक मानुषिकता (पारम्पर्य) की दृष्टि से नहीं। हेगल मानव वस्तुओं के इतिहासीय पारम्पर्य का मूल कालातीत विचारों के अन्तर्धानी विचार में बताता है। उसकी दृष्टि में संसार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ब्रह्मा कीय कर्ता धारणवेतना प्राप्त करता है। ऐहिक अस्तित्व ठाटिक पुन-अस्तित्वों में बदल दिए गए हैं। इतिहास परमात्मा का जीवन-चरित्र है धारणा का स्वाधीनता की ओर प्रमाण। बीच-कालगत यह संसार जनतु केवल एक धारणा है। इस प्रकार का सिद्धांत मार्क्स को एसा प्रतीत होता है कि वह विद्यमान व्यवस्था को उचित ठहरा रहा है। वास्तविक और बुद्धिमत् की एकक्यता के सम्बन्ध में हेगल के परलप्ट रूप इस स्थिति को स्पष्ट नहीं करते। हेगल का दर्शन विद्यमान दशा को सुधारने या उसका पुनर्निर्माण करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा देता प्रतीत नहीं होता। सामाजिक

रति के सम्यक हेमस को सामाजिक समझीठे और राजनीतिक व्यवहार
साधना का सम्यक मानत हैं।

इस प्रकार का दृष्टिकोण हेमस के प्रति न्याय्य नहीं है क्योंकि उसकी
दृष्टि में प्रत्येक समीप बस्तु वह प्रत्येक बस्तु आ परम में उदासीन है
यही पूजनया वास्तविक है और न पूजनया तकमगत है। यद्यपि अस्तित्व
मान (मनु) वास्तविक का परमिवाचक नहीं है। इसलिए यह नहीं समझा
जा सकता कि हेमस का सम्यक सम्यकत्व स्थिति का उचित टहराना है।
सबसे अधिक वास्तविक बस्तु पूजनया धारण है। यह है वह नहीं मनु
या कि होना चाहिए। नम सम्यक स्थापित व्यवस्था अस्तित्व नहीं है। फिर
ही मायम की धारणा में कुछ जान है। यह सब समीप अस्तित्व व्यवस्था
विक है। ता किमी भी समीप अस्तित्व की धारण या नम वास्तविकता के
बीच अन्तर करना सम्यक नहीं होया उदाहरण के लिए गणतन्त्रवादीक प्रजा
तन्त्र और साम्यवादी अन्ततन्त्र के बीच। मायम में हेमस स इतिहास का
तकसंगत विचार मानने का विचार ही प्रस्ताव है। अन्तर जबत
होता है कि सम्यक हेमस का विचार का ही ही उमटा करके रग दिया है। उदा
हेमस की दृष्टि में धारणा (जिसमें नम नदिना और परम सम्यकत्व है)
धारणिक प्रणामी का निर्धारक तन्त्र है उदा मायम का दृष्टि म धारणिक
प्रणामी जिसकी धारणा एक विधि परम धारणिकत्वनाद तक प्रणामी
है धारण तन्त्र है जिसके परिणामस्वरूप धारणिक तन्त्र उदयन हात है।
हेमस की धारणा में मानक व्यवस्थाओं द्वारा धारण करने के लिए धारण
सुझाव है। इतिहास का निर्माण मनुष्यों द्वारा किया जाता है। यह
अध्यात्मिक धारणियों भौतिक तन्त्र या धारणा को स्वतन्त्रात्मिक इतिहास
का परिणाम नहीं है। यह विही निर्दिष्ट मनुष्यों की स्त्रोत्र में मनुष्यों
का कार्य है। इतिहास की धारण निर्दिष्ट धारणियाँ मानवीय इच्छा और
उद्देश्य है। उदा मनुष्य इतिहास के दृष्ट संरचना की सामाजिक उपम-गुणों
की धारणाधारा की बात कहना है ता वह इतिहास के केवल एक धारण
कम दे रहा होगा है। नहीं धारण में यह धारणिक मानक व्यवस्थाओं को दिया

गया है कि वे घटनाओं को प्रभावित करें और उनकी विधाओं को मोड़ें। परन्तु जब हेमस यह कहता है कि विचार भौतिक तत्त्व पर घासन करते हैं तो यह इतिहास के प्रति अधिक सज्जा होता है। किन्तु धीरे सफल धार्मिक तत्त्वों पर लाद दिए जाते हैं वे धन तत्त्वों द्वारा घासित नहीं होते।

३

धर्म धीरे सामाजिक क्षमति

परन्तु सज्जा धर्म इस कथन में सामाजिक घासतवावियों से सहमत है कि घासत धीरे इस पृथ्वी पर ही प्राप्त किया जाना है। धर्म की दृष्टि में मनुष्य के प्रति प्रेम उतनी ही धारणाभूत वस्तु है जितनी कि परमात्मा की पूजा। हमें अपने विकास के लिए इस धीरे के माध्यम से ही इसे स्वतन्त्रित करके इसे बिलकुल बलकर, प्रबल करना होगा। सामाजिक घासतवादी लोग घासत धीरे वास्तविक के मध्य विरोध में ही विरोधी विरम-धमकवावियों के मध्य संघर्ष में विरमठ करते हैं जोकि तारे धर्म का सार है। बुद्ध ने संसार के दुःख धीरे कष्ट को दूरकर उन्हें संसार से उन्नाप्त करने का प्रबल किया। उसने उनकी जपेला या व्याख्या-अर नहीं कर दी यपितु एक पक्के वास्तविकारी की तरह उनपर विरम वाले का प्रबल किया। ईसा ने यह अनुभव किया कि स्वर्ग का साम्राज्य इस संसार के राज्य के विरोध में बटा हुआ है। सैण्ट पॉल की दृष्टि में इस संसार की यकिनवा धारणा की घासतियों के मुकाबले में समझ है। घासतवादी की दृष्टि में धार्मिक घासत नरमात्मा के नगर के विरम बुद्ध कर रही है। धर्म संसार की मत्ता के इकार पर धार्मिक घासत को बा बिटाने के लिए एक बुनीनी है। यह मनुष्य का इस बात के लिए साहजान है कि यह मजिमान धीरे पचीधन करे।

परमात्मा एक सर्वोच्च वास्तविकारी है। यह न केवल एक कुशल निर्माता

परम्पराभित मुक्त है। ईश्वर हमें बताता है "साधनों के ऊपर कर्म रखते हुए जाना ही वह माय है जिससे होकर बलरूपवात्मक भावना अपनी पूर्णता को प्राप्त करने के लिए जाने बढ़ती है।" यदि एक नई धीर भयेताहृत् व्यक्ती व्यवस्था नहीं होती हो तो बुधनी व्यवस्था को छोड़ जानना होगा। सर्व विज्ञान के लिए जीवन और व्यवसाय आवश्यक है धीर जो कुछ भूमि पर व्यर्थ भौकभाक किए हुए है उसे गष्ट कर देना होगा। हम ऐसी कड़ियों से जो किसी समय जीवित भी बरम्बु सब निर्जीव हो चुकी है न केवल प्राध्यात्मिक जगत् में अपितु राजनीतिक सामाजिक और धीरानिक जगत् में भी बिरे हुए है। केवल धामक उपार्थों से काम नहीं लेना हम समय आवश्यकता एक अन्तिवारी परिवर्तन की भावुकभूत उपम-मुपम की है। बोझ-सा भी फल प्राप्त करने के लिए धामारभूमि की भवेक भौतिक नैतिक और मोतिक सुधारों आवश्यक है। जिन्हे हम प्रदाउरणा बिरोह, अन्ति कहते हैं वही के साधन है जिसके द्वारा प्रमति होती है।

सबभुवार उनसमगुष्ट धान्दोलकारी बिरोही और शान्ठिकारीसोपा द्वारा लिए गए हैं जो पाठकों के जगत् केविन्दु बुद्ध करते हैं। वे मने धामरी मनभुक्त करते हैं मने धर्म-विज्ञानों का प्रतिपादन करते हैं मने संविधाना की नीव डालते हैं। ईशाने पुरोहितों के पाठकों के विरुद्ध, साम्राज्य वाली रोम की मृतिभुक्त बरम्बरारों के विरुद्ध और अपने समय के कड़िवत 'मद्राचार' के विरुद्ध बिरोह किया। वह सामाजिक धामेण जो इन महान नेपाओं को बन धीर प्रेरणा देता है धामिक उरताह के साथ धतंमन नहीं है इतना ही नहीं वह उरका स्वाधामिक परिधान है। धामिक संत र्वपम्बर जिसकी धामाएँ धामाचार और धाम्याय को रैगते ही भुक्त उग्नी है वे लोभ है जिन्होंने नाधवता के धामतरब पर सबसे पहली धाम डाली है। धम को धामावहारिक रूप से धाम्य उरुतना जिसे धामर्तवार से धामिन उपमन जाता है धामावरयक प्रतीत होता है। केवल इतने कि हमारी रधि सामाजिक है वह निष्कर्ष नहीं निकलता कि हमें धामे-धामको धाम्यान्वित धम से धाम कर लेना चाहिए। प्राध्यात्मिक सवयता और सामाजिक

यस्यता न केवल बरस्वर मन्त्र है, अपितु एक-बुद्धे की पूरक भी है। धार्मिक पक्ष की उपेक्षा करना अपनी बुद्धाद रूप से सामाजिक काम करने की समता को सीमित कर देता है। संसार का बार-बार कष्ट-घण्ट किया जाता है और इस प्रकार यह बीरे-बीरे निरन्तर पूर्णता के निकट और निकट तर होता जाता है। जब तक मानवता निकृष्ट अपरिष्कृत और कठोर है तब तक इसे पित्रसामे और बालने का कोई अन्य उपाय नहीं है। ईश्वर में विश्वास करनेवाले लोगों में यह पड़ा होती है जो बिड़ोह करती है। परमात्मा बाड़ को छोड़नेवाली असांखि फेनालेवासो और काम्ठिकारियों का साथ देता है। परमात्मा के सेवक सांखि नहीं जाते अपितु मन्त्र उपस्थित करते हैं, क्योंकि वे उन मन्त्रों के सहारे अपनी नाव घटते हैं जिन्हें संसार देख नहीं सकता और इसलिये संसार उनसे भूना करता है।

क्या इतना पर्याप्त होया कि हम सबमें विनाश करने के लिए कुछ मन्त्र हो ? क्या बिड़ोह के लिए बिड़ोह को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ? धार्मिक हमारे ठामन धार्मिक प्रतिबन्धों के बिच्छु मुख-भुविना पसन्द करनेवाले लोगों के अनेक सस्ते और सरल बिड़ोह धाते हैं। उच्च स्वभाव के लोगों का विनाश सरल और आसपेक लयता है।

हमें केवल बिड़ोह के लिए बिड़ोह करना है या उसका कोई और उच्च तर लक्ष्य होना चाहिए ? सृष्टि का कथन है कि उसका कोई उच्चतर उद्देश्य है। विनाश का अन्तिम लक्ष्य जैसी कोई वस्तु है। वस्तुएं सभी तिरर जन पाती हैं, जब वे टीक-इय सेवक बाण। संसार को उन लोगों को सौंन दिया जाना चाहिए, जिनका कि वह न्याय्य अधिकार है।

संसार न्यायत किन्तु है ? क्या यह उन कठोरचित्त धार्मिक बुद्धिपाचार, ध्याचार-भुद्धिवाले लोगों का है जिन्होंने इसपर कब्जा कर रखा है ? अथवा सब धर्म-ग्रन्थों की भांति इसाई धर्म-ग्रन्थ भी यही कहते हैं ‘पृथ्वी परमात्मा की है, और उनही पूर्णता भी।’ इसायासन् इहं सर्वम्— ‘यह सब कुछ परमात्मा से आया है।’ यदि हम परमात्मा के सेवक हैं, तो हमें सत्य के लिए कार्य करना चाहिए, उस सत्य के लिए जो मनुष्य और

मनुष्य में समुदाय और समुदाय में राष्ट्र और राष्ट्र में ठीक सम्बन्धों की स्थापना करना चाहता है।

४

प्रेम और कष्टसहन

बिनाश जोय पूर्वा के स्वामी बनेंगे। मुग़ और मुकियाँ में रहनेवासे और मनुष्य जोय बिनाश नहीं है। न बैतनभोगी पादरी और पुरोहित ही बिनाश है। जो जनसाधारण को नष्ट करने के अर्थ से राज्य में बतराते हैं हमने देखा था कि किस प्रकार मग महामुद्र में प्रत्येक भय-विश्राम के क्षणित समर्थों में घनने राग्या की युद्ध-सम्बन्धी नीतियाँ का समर्थन किया था। साम्प्रदायी जोय बिनाश कास्तिर कहकर मित्र की रई की बिनाश व मताए गए व उम्हनि युद्ध का विरोध किया और मनुष्यों के बुरे से बुरे दुष्टों का सामना किया। धृति का अर्थ है कि मन्त्र अधिमानी और शायम लोगों का प्रति मित्राणा और शीतों और बुधियों को दे दिया जाणगा। "मैं उन ऊँचा उठाऊँगा जो नीचा है। और जो ऊँचा है, उसे नीचे गिरा दूँगा। सांसारिक प्रमाणी जो बिलकुल बदल सामने की धारकबचना है। उन समय भी जबकि ईसा घनन काय में मग्न था उनके अनुयायी इस विषय में विचार-विचार कर रहे थे कि उनमें से कौन सबसे बड़ा बनेगा। अब धिनित्र पर जोय को छाया गहरी और गहरी हो रही थी वह भी वे पर और मना के विचारों में डूबे हुए थे। यदि विनी मनुष्य को महान बनता है तो उन मनुष्य बनकर मनुष्य रहना चाहिए और यदि उन प्रमग बनता हो, तो वह मना और बलिदान में प्रमुखता द्वारा होना चाहिए। पात्र हम मना और प्रमुखता के उन्हीं सांसारिक विचारों से मरे हुए हैं। महता विनी मग पुरुष का धारक्यक गुण नहीं है। इने मारी मुमम मुण माना जाता है। मयस लोगों का दुर्बलों की सहायता करने का

वाचित्त्व/सम्पूर्ण सभ्य जीवन का आधार है। परन्तु हमें अपने धर्म और विचारधारा में यह पढ़ाया जाता है कि सशक्त लोगों को दुर्बलों से सेवा प्राप्त करने का अधिकार है। यह विचित्र सिद्धान्त ही हमारे व्यवहार की ठह में रहता है। क्योंकि स्त्रियाँ दुर्बल होती हैं इसलिए उन्हें पुरुषों की बाजी बन कर रहना चाहिए। पिछड़े राष्ट्रों को बिसका धर्म है भौतिक दृष्टि से पिछड़े राष्ट्रों को सबसेतर सभ्यताओं का अनुसरण बनकर सन्तुष्ट रहना चाहिए। परन्तु धर्म इसके उल्टे इस सत्य की घोषणा करता है कि सशक्त लोगों को दुर्बलों का सेवक बनना चाहिए। जिसे अधिक दिया गया है, उसी से अधिक माँगा जाएगा। यदि हमें अपने उन्नत राष्ट्र होने का धर्म है तो उसके साथ कर्तव्य और सेवा का वाचित्त्व भी सजा हुआ है।

संसार में धर्म और सेवा के नेत्रियों का है। स्वामी सबक है। जो कोई इच्छापूर्वक धर्म सुधार रूप से दूसरों की सहायता करता है वह सबसे महान्त है। मार्गदर्शक धर्म सुधारक सेवा कष्ट सहन करते हैं। वे अपने स्वार्थ की अपेक्षा किसी महत्तर मध्य में लग जाते हैं। धर्म तक तक मुझ नहीं मोड़ते जब तक कि वह लक्ष्य प्राप्त न हो जाए। 'संसार में तुम्हें मुसीबतें सहेगी पड़ेंगी।' धार्मिक दृष्टिकोण इस लोकप्रिय विश्वास के साथ मेल नहीं खाता कि धार्मिक जीवन का मुख्य मूल्य है। जब दार्शनिक सोच इन धार्मिकवादी दृष्टिकोण को घपनाते भी हैं कि धार्मिक मुख्य धर्मधर्म है तब उनका धार्मिक से धर्मधर्म धार्मिक प्रसन्नता से होता है और भौतिक सुख-सुविधा का धार्मिक सम्बन्ध से नहीं होता। वे यह मानते हैं कि कष्टसहन पूर्णता या धार्मिक धार्मिक धार्मिक तक पहुँचने का मुख्य साधन है। प्रेम और धर्मधर्म की धर्म ही इस संसार को नये रूप में गढ़ सकती है जो धर्म धर्म और धर्म की धर्मों में बहका हुआ है। जिस धर्मधर्म में मनुष्य धार्मिक निर्भर और धार्मिकधर्मधर्म बनने का धर्म करते हैं उसी धर्मधर्म में धर्मधर्म और धर्मधर्म होते जाते हैं। जिस सीमा तक धर्म में प्रेम होता है उत सीमा तक वे धर्म और धर्मधर्म बन जाते हैं।

धर्म और धर्मधर्म दोनों साधन-साधन रहते हैं। वे जो धर्मधर्म के धर्मधर्म

है। शायद यह मानता था कि प्रेमी मोक्ष सब बातों में कुछ का सर्वोत्तम मूहुट चारप करते रहे हैं। जो भी कोई वस्तु प्रेम करता है, वह कष्ट में नहीं बच सकता। अतः धार्मिक धार प्रेम करने जगता ही धार्मिक धार ही कष्ट सहना होगा। प्रेम करने का धर्म कम दुखी होना नहीं धर्मिणु कम निहृष्ट होना है। जीवन विराधा की एक शृंगमा है। हममें से सर्वोत्तम लोग एक दूसरे के सम्मुख हाकर एक-दूसरे को समझने में समर्थ रहने हैं। पुरुष और स्त्री माता-पिता और सम्भाल एक-दूसरे के सम्मुख पारस्परिक विरोध में लड़े होते हैं। हमारे संसार में जो इतनी ठेठो में बचन रहा है जो बहुत पबराता हुआ धीर धन सम्बन्ध में एकदम धर्मिणित है जिसकी सब उपाय बुझी हैं जिसके धारणा में धामुसधुम परिवर्तन हुआ गया है जिसमें धाम धीर परम्परा में पबिध मानी धामधानी धम्पुषों में विरधाम बुझी ठरह मध धड़ा गया है, बन्धे मानदधन के लिए माता-पिता की धीर नहीं गावते धीर माना-पिता बैचन धीर धिन्धित रहने हैं जबकि उन्हें धम्पीर धीर धाम्न रहना चाहिए। क्या हम केवल इधलिए मुहु धीरकर धन दे मचने हैं कि इन धुद्धरे को समझने नहीं? यदि हम मधमुध प्रेम करते हैं तो हम इन प्रकार नहीं धन दे मचने। क्या हम विरोध पर धन-श्रयोप धारा विजय या मचने हैं? इन धपनी धाम्परिक धधिसाधाधों धीर धननी धपुण मानसाधों का धन प्रयोप धारा धमन नहीं कर सकते। कारण यह है कि धरार्थी धरिधर्य्य एक प्रधर्य्य धानु होगी है। यदि हम धपने विरोधी को हृष दें तो धा धाध में रहेवा धीर ध्योही धधरर धिसधा, ध्योही वह धन पछाङ देवा। धिधधे धधधीना हुआ धवा धी वह धन धधध धिध धन जागा है धरधिन धधधरी धधध धध धीना है। धिधा धने ही धधधय का धनन धर दे परधु धधधे धधधध धधधो। धिधाधनक धधधध धधधध धी धधधना है। यदि हम विरोध पर प्रेम धारा विजय नहीं का मचने तो एक ही धराध बधधा है धीर धध है धधन करना। हमें या तो धधन करना होगा या धनधन करना होगा। दोनों ही धधों में यह कष्टमहन से धिधन नहीं है। इन धधधों धीर धधधधधधधों को, धधधधध धीर धधन को धधधों को धध

नहीं सकते। दूसरे उन्हें समझते ही नहीं। वे मानते हैं कि धार्मिक धर्म वस्तु है और भावना बटिया चीज है। और यदि हम प्रेम करते हैं तो हमें इस गन्धको शीततापूर्वक सहन करना होगा। ऐसी बधाओं में मनुष्य को अपने विचारों को अपने तक ही रचना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अपनी धार्मिक प्रकृति के साथ होह करे। इसके विपरीत इसके द्वारा व्यक्ति मौन द्वारा अपनी प्रकृति की रक्षा करता है और अपनी सहिष्णुता द्वारा उसे सुरक्षित रखता है। धर्मोपस्था प्रकृतम धर्मियों भी अनुभव करती कि प्रेम की निरद्वन्द्वता का, इस प्रेम की निरद्वन्द्वता का जो धार्मिक धर्म कष्टसहन करता है मुकाबला कर पाना कठिन है।

हमसे कहा गया है कि हम सुराई के बन्ने से बचने की प्रार्थना करें। कुछ के पाठों पर ध्यान दीजिए "होय द्वारा होय का नाश नहीं होता केवल प्रेम द्वारा ही होय का नाश होता है।" "मियुधो यदि शक और हृत्कारे तुम्हारे जोड़ों और पसलियों को धारे से काट द ठव भी जो कोई इस बात पर शोक कर बैठेगा वह मेरे धार्मिकों का पालन नहीं कर रहा होगा।" उपनिषदों के काल से ही हिन्दू नेता कहते आए हैं कि हमें धार्मिक धर्मियों के प्रति जो सहिष्णु और हिंसक लोगों के प्रति भी बर होना चाहिए और सांसारिक वस्तुओं में धार्मिक धर्मियों के साथ रहते हुए भी सांसारिक वस्तुओं से धनासक्त रहना चाहिए। सम्भव है कि इस प्रकार का धार्मिक धर्मोपस्था धार्मिकों को, जिनमें कि जीवन की प्रकृत भावना मरी है पसंद न आए। परन्तु यह बिना हुए धर्मों को नर सकता है और वैयक्तिक कष्टों

१. "वेदों को माया कहने वाले पर दृष्टि रत्ना है
 धर्मों को धर्मों के रूप पर लय तक यह तक कि उनमें जीवन रहता है
 जन्म मरण हमें बड़े का बड़े उन धर्मियों के प्रति
 प्रेम ही अतीव इतर और सब विकल्पित करना चाहिए।
 हा हमें धर्मों के प्रति प्रेम का व्यवहार करना चाहिए,
 धर्म-धर्मों के प्रति प्रेम और सर्वत्र
 जो मनुष्य, दुर्मात्मा और शत्रु के रूप हो।
 (सत्यमेव जयते १९८-१९९ संसदीय धर्म वेदिक इन धर्मों के अनुसरण।)

को हुमना कर सकता है। वय धीरे काम के रंगमंच पर इसने बैठकर धोखे बात बुझ नहीं है कि उसे पुरुष धीरे सच्ची स्त्रियों जो मुक्त-मुक्तिपाथों का परिणाम कर देग हैं। प्रकृतों की नाति कष्ट सहन करते हैं और संसार की यमितियों में प्रभावप्रस्त होकर प्रेम बिछेरते हुए बनते हैं। धीरे के न तो उसके शिष्य से बात करते हैं न उससे कुछ प्रकृष्टा अनुभव करते हैं। धीरे न मही चाहते हैं कि इस बात को कोई व्यक्ति जाने।

५

ईश्वर प्रेम है

ईश्वर सबका स्नेही भिन्न है—भगवद्गीता के शब्दों में वह मुहूर्दं मय भूतानाम है। यदि ईश्वर ने प्रारम्भ के लिए शिष्य प्राप्त की तो वह शक्ति या लोभ द्वारा नहीं। अपितु प्रेमपूर्व प्रेम धीरे कष्टसहन द्वारा प्राप्त की। इस महान उक्ति का कि "परमपिता को पुत्र का निश्चय कोई नहीं जानना" प्रेम यह है कि केवल शरीर व्यक्ति जो नीच प्रेम करता है। पिता के रूप में परमात्मा के मन्त्रे स्वभाव को समझ सकता है। जिसकी कि विषयता कष्ट सहन करनेवाला प्रेम है। परमात्मा का राधा नहीं है जो अपने देवीय शक्तियों का प्रयोग करता है। धीरे अपना कानून दुनिया पर लागू करता है। अपितु वह तो एक मुहुर्दं स्नेहमय पिता है। जो केवल शक्ति प्रेम करता बन्ध नहीं कर देता कि हम पाव करने हैं और नष्ट नहीं उतरते। जिस धर्म के लिए ईश्वर ने शक्ति पर बढ़कर प्राप्त किए। उनके सारभूत माय का ज्ञान ने अपने धर्मवच में हम प्रसार प्रकृत किया है। "प्रिय कष्टुषो हम एक-दूसरे में प्यार करना चाहिए। क्योंकि प्यार परमात्मा का है। जो कोई प्रेम करता है वह परमात्मा में उपास हुआ है। धीरे परमात्मा को जानता है। जो व्यक्ति प्रेम नहीं करता वह परमात्मा को नहीं जानता। कारण कि परमात्मा प्रेम है। न्याय नहीं अपितु स्वयं-स्वयं धीरे हितार्थ

क्रियाएँ रखकर न बसनेवाला प्रेम ही इस विश्व का गहनतम तथ्य है।

प्रेम कोई छान्दिक भावना वा बुद्धिमत् संवेग नहीं है। धर्मिणु यह तो जीवन की एक वृत्ति है, जिसका मन, भावना और संकल्प पर प्रभाव होता है। यह प्रथम महम और चिरस्थायी होती है। इसमें प्रेम-वास के प्रति मान्य होता है। उसकी सर्वोच्च कोटि में विश्वास होता है और उसका अधिकतम भला करने का बल होता है। हम एक-दूसरे के इस प्रकार धर्म हैं कि हम अपने-आपको हानि पहुँचाए बिना प्रथम लाभ पाए बिना अपने पड़ोसी को हानि या लाभ नहीं पहुँचा सकते। प्रथम यह नहीं है कि ऐम सोम है या नहीं जो प्रेम के सोम्य नहीं है। धर्मिणु यह है कि क्या देवगुण्यता का प्रथम यह नहीं है कि सोमो से नर भी प्रथम किया जाए, जबकि वे प्रथम करने वाध्य न भी हों? जहाँ भी जीवन पर प्रथम का धारण होता है। जहाँ जीवन प्रथम का एक अधिव्यम कृत्य बन जाता है। जिसमें प्रतिशान की कोई कामना नहीं होती। उसका अस्तित्व प्रथम से पुनः नहीं किया जा सकता। यद्यपि बाह्य दृष्टि से देना जाए, तो इस प्रथम में धान्य या कष्ट भी हो सकता है। जो प्रथम धार्म्यात्मिक स्तर का है। उसके लिए तो कोई प्रतिदान हो ही नहीं सकता। उसका तो केवल विनियम प्रथम वास्तविक धारण-प्रथम-नाम हो सकता है। या और सही कहा जाए, तो उसमें केवल हिस्सा बंटपा जा सकता है। यह पूर्वतना निस्वार्थ होता है और यह निस्वार्थ हुए बिना रह नहीं सकता। पेटे की इस स्थिति में "यदि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ तो इससे तेरा कोई सेना-देना नहीं है" उस पूर्व निस्वार्थता की कोटि पर बल दिया गया है। जो सन्धे प्रेम का एक बटक तत्त्व है। जो उस प्रकार का प्रेम करनेवाले व्यक्ति को अलौकिक स्तर तक ऊपर उठा देती है। जो इतनी तीव्रता से प्रेम करता है। यह शक्ति हो जाता है।

६

पड़ोसी से प्रेम

पड़ोसी से प्रेम का विषय कि सब धर्म उपदेश करते हैं, यह है—उसके प्रति घोर उसके व्यक्तित्व के प्रति स्याम घोर घादर । अपने पड़ोसी से प्रेम करने का यह धर्म नहीं है कि उसे हमारे मतों का स्वीकार करने के लिए विवश किया जाए, धरितु यह है कि हम अपने प्रमापों को त्याग दें घोर हमारे व्यक्ति की धरिओं से देखें घोर उसके हृदय से अनुभव करें घोर उसके मन के अनुसार मन्त्रों । जब हमारा पड़ोसी धरणी प्रकृति के बन्धन के अनुसार कार्य कर, तब मुह बनाकर बैठ जाना पड़ोसी के प्रति प्रेम नहीं है । पड़ोसी से प्रेम करने के लिए हमें दूसरों की सम्पत्तियों के प्रति उदारवेत्ता घोर सत्कारणीय होना होगा । जब सुमनेब ने यह कहा था “मुझे ऐसा लगता है कि जीवन का सम्पूर्ण महत्त्व इस बात में है कि व्यक्ति अपने धारणो दूसरे लम्बर पर रने” तो यह प्रम पर ही टिप्पणी कर र्छा था । “यदि माह जाने से मेरे भाई को कुछ लगता है, तो मैं कभी भी धर्म नहीं लाऊँगा, विषम मेरा भाई धर्मगन्त न हो ।” यदि हम ज्ञानपान तर के मामलों में इनके अनुकूल हों, तो हमें सामाजिक जीवन घोर धर्म के मामलों में दूसरों का क्रिना धार्मिक ध्यान रखना चाहिए ? प्रत्येक व्यक्ति को जैसा यह चाहिए, उस ढंग में जीवन-यापन करने का बहिन धार्मिकार है । सामाजिक के जीवन में हम सब एक ही ढंग के बस्त्र पहनते हैं, जो विनिबर्णों के अनुसार बने घोर सिने हाने हैं, हम एक ही प्रकार के सामाजिक नियमों का पालन करने हैं घोर हमारे विचार उन्ही एक प्रकार की परम्पराओं द्वारा यदु जार्ने हैं । हम एक ही समाचारपत्रों को पढ़ने हैं, एक ही जसबिनों को देखते हैं घोर एक ही धेनों को देखते हैं । हम एक-दूसरे की इच्छनी हास्वारायद धानना के भाव नवस करते हैं कि हमारे व्यक्तित्व उर्ध्वित रह जाते हैं । हम निष्ठा के देवता के पुजारी बन गये हैं ।

यह देखकर बेब होता है कि आज के इस युग में नी ऐसे ईमानदार पुरुष और स्त्रियाँ हैं जिनका यह विश्वास है कि वे और केवल वे ही सत्य के मार्ग पर हैं और जो कोई व्यक्ति उनके मत को स्वीकार नहीं करता वह सचमुच स्या का पात्र है, मानो वह कोई घमांगा और बटिया कोटि का प्राणी हो। यह एक अहंकारपूर्वक विनम्रता और धार्म्यात्मिक रङ्ग है जो तिरस्कृत पड़ोसी के लिए अत्यधिक विन्या के रूप में प्रकट होता है। अपने प्रेम की यह भाव है कि हम अपने सभी मनुष्यों के पृथक् व्यक्तित्व को स्वीकार कर और धार्मिक सुष्ठता और सख्त एकता प्राप्त करने में उनकी सहायता करें।

यदि हम धार्म्यात्मिक दृष्टि से जीवित हैं तो हमारी प्रेम और सेवा करने की क्षमता सेवा बढ़ती जाएगी। हम दूसरों के प्रति दयालु होंगे और अपने प्रति कठोर होंगे। धार्म्यात्मिक प्रभाव की विशेषता यही है कि वह धार्मिक दृष्टि से कठोर और तपस्वी होता है और बाह्यतः सख्त और क्षमाशील होता है। केवल धार्म्यात्मिक भाग ही बुद्धी धारमायों का उद्धार कर सकते हैं और उन्हें संपात्तित कर सकते हैं। जब हम अपने जीवन पर दृष्टि डालते हैं जब हम उन क्षमों की याद करते हैं जबकि साहचर्य को अनुभव कर पाने के सुघरसर हमारे पास वे तब हमारे मन में यह तीव्र परचात्ताप हुए बिना नहीं रहता कि हमने तब उपा साहचर्य का अधिक लाभ नहीं उठाया जब वह हमारे इतना अधिक निरुप वा और यह कि हम इतने प्रभे और हृदयहीन न और कुछ तनिक अधिक क्रोमत्त और तनिक अधिक दयालु नहीं न। जब हम अपनी विगत स्मृतियाँ की याद करने लगते हैं तो हमारे लिए सबसे कष्टदायक स्मृतिवा उन घबसरोँ की होती हैं जब हमने अपने-आपको तब भी बिड़बिड़ा और उपाशीन दिखाया जबकि धुबिध धाँसों हमारी धार लालसापूज बाटा से देख रही थीं जब हमने अपने प्रेमपूज मनोरंम को अपने अधिकारों की एक ईप्यपूर्ण भावना के कारण अपने बढ़प्यन के किती मिथ्या अभिमान के कारण परम्परागत नियंत्रित धाँस के विनी ग्रीन त्रय के कारण अपने

नामितों की किसी कुछ भावना के कारण परे हटा दिया जब हमने अपनी मुस्कुराहट को दबा दिया और अपने हाथ को रोक लिया और चुपचाप मुँह मोड़कर दूसरी ओर बम रिंग। जीवन गवाए हुए घबसरो की एक मूँबसा है। परमात्मा हमें घबसर प्रदान करता है परन्तु यह हमारे हाथ में है कि हम उन घबसरो को पकड़ते हैं या नहीं।

७

“कससा मत हो

जब हमारे सम्पूर्ण 'शोपी' और 'घपरापी' घाते हैं तो हमारा प्राकृतिक संसार अपने नियत प्रमाणों के अनुसार अर्थात् का समझन करता है और वापिस का संक बठा है। तमठा और स्वस्थचितता के इन व्याख्यानाओं की दृष्टि में जिनमें बुराई को कुछ निवामने के लिए एक छद्म इन्द्रिय विकसित हो गई प्रतीत होती है अर्थात् और बुराई (पुण्य और पाप) स्पष्टतया सीमांकित और निश्चिन्त है। उनके आयाम और बाटिया प्राचीन ऋषियों और शास्त्रकारों द्वारा पहले से निश्चित कर दी गई है। हमारे चिंतन में हमें प्राचीन नियमों का ज्ञान कराया है और हमें उनका धारण बना दिया है। सभी भाति स्थापित उग सज्जिता का ही धारण मूढकर पालन करना हाता है यदि कोई पासन न करे तो उन अपनी स्वतन्त्रता अपनी मर्यादा इतना ही नहीं जोवन तक देकर उमका मूल्य बचाना पड़ता है। यदि हम कोई एककर माँके तो हमें अनुभव होगा कि नैतिक महिवा एक कड़ि है और प्रत्येक वस्तु यहाँ तक कि कास स्थान और कारण जैसी धाधारभूत धारणाएँ भी विमूढ बलाना-मान है। समार कुछ भी जानना नहीं है अतितु बस्यता कर लेता है मान लेता है। अतीत में परम्पराएँ और प्रयाण अनेक प्रकार के बायों की उचित टट्टरानी रही है। हम विश्वासों को पलाते से नरबलि देते से बच और जल्दीइन से धान्य लेते

ये लोगों से हरा-फिरी (घातमहत्या) करने की भाव करते थे और हम इन सब बातों को सर्वमान्य व्यवस्था का धर्म मानते थे। जब किसी प्रकार का धारण सामाजिक मत के अनुकूल होता है तो हम यह समझते हैं कि हम व्यक्तिगत जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं। धारकन राज्य अपने लोगों नागरिकों को मुक्त के नाम पर निरद्विध भाव से बलि कर देते हैं। जीवन एक अविद्यमान कर्मकांड बन गया है।

परन्तु अधिकार में विश्वास मानव प्राणी को व्यक्तिगत-भूमि कर देता है। जब हम किसी अन्य व्यक्ति के निर्णय को अन्तिम मान लेते हैं तो हम अपनी आत्मा की स्वतन्त्रता को खो बैठते हैं। विमुक्त सब से औपचारिक और ऐतिहासिक जीवन मानव प्राणी के लिए बिलकुल अयोग्य है। हालांकि हममें से अधिकतर लोग इस प्रकार का जीवन बिताते हैं। मानवीय सम्बन्धों में अतिशय भी प्रगति हुई है वह सब धर्म से अलग रखनेवाले जन लोगों के कारण हुई है जो अपनी कल्पना-शक्ति को पार डालने अथवा अपनी स्वाभाविक सहानुभूति को कुचल डालने के लिए तैयार नहीं हैं। गिप्ताधरण की पूजा केवल वे ही लोग कर सकते हैं और सजीव मन और हृदय की तुलना में वे ही उसे पसन्द कर सकते हैं जो धार्मिक दृष्टि से मर चुके हैं। अन्त लोग नियमनिष्ठा के विरोधी रहे हैं हालांकि इसका बिलोम सत्य नहीं है। केवल नियमनिष्ठ लोगों के लिए जीवन में कोई समस्याएँ नहीं होतीं। नियमनिष्ठा जहाँ सामाजिक सुरक्षा के लिए आवश्यक है, वहाँ यह भी सत्य है कि यह धार्मिक जागरूकता का स्वान नहीं ले सकती।

यदि हम इस सत्य को समझ लें तो हम प्रपापों का अनुसरण न करने वाले लोगों की निन्दा करने में और अधिक सावधानी से काम लेंगे। कोई दोष परिस्थितियों के प्रभाव में धारक अथवा अपने व्यक्तिगत को अभिव्यक्त करने की प्रेरणा के अयोग्य होकर किया गया हो सकता है। उन युवक में जो अपने विद्या-काल में ही इसलिए मर जाया है क्योंकि उनकी धारणा स्वस्थ हो गई है उन युवक जैसी अमरीमी लड़कियों में जो अपनी बनावटी

भावनाओं द्वारा मुक्तियों के अपरिच्छेद साधकों को उत्तेजित कर देती हैं, हम कैसे कह सकते हैं कि उनमें कुछ भी बिम्ब बंध नहीं है? संसार में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो पुरुषतया विष्य प्रथमा पूर्वतया वैशाधिक हो।^१ हम सबमें चाहे वे छोटे हों या बड़े चाहे निम्न हों चाहे उच्च सौन्दर्य के प्रति एक महान्बुद्धि शरय के प्रति एक सासना भीर प्रेम की एक प्रमीम साकोशा है या हमें बिम्ब बनानी है। भूलों और दुर्बलताओं में भी एक प्रपना मानिक शक्तिर्भव होगा है। मोय प्रसाधारण दशाओं में पाए जाते हैं। वे प्रत्यय के संभर में पड़कर एक ऐसे संसार में प्रपराय करते हैं जिसमें स्वाभाविकता का स्थान निरन्तर रुद्रिपरामयता सेती रहती है, जिसमें सरलता और नसपिकता प्रकृत्यों के हर के नीचे जिन्हें कि कानून कहा जाता है कुचनी जाती है। हम इस बात को नहीं देख पाते कि हमारे समाज की व्यवस्था ही प्रत्याभाविक है और यदि हम प्रपराओं और प्रपराकियों से सुन्दरता चाहते हैं तो इस समाज-व्यवस्था को बदला जाना चाहिए। इसके प्रतिरिक्त मानवीय जीवन में वैवयोक का भी बहुत बड़ा हाय रहता है और व केवम प्रभाये मोय होते हैं जिन्हें प्रमाधार सहना पड़ता है। वे कष्ट पाते हैं और मन्त्रना से जीवत हैं और उन्हें बच देकर हम उनपर और भी गहरे प्रभाव करत हैं।

बहु केवम एक ही है या वह कह सकते हैं "बदला देना देना काम है मैं हिमाव बुकना कर भूंगा। मानवीय प्राप्तिओं का वह गमभना चाहिए कि वे स्वयं पायी हैं और उनके लिए केवम एक ही उपाय है कि वे प्रेम और दया करें। संसार में कोई प्राणी दुष्ट नहीं है है ता केवम प्रभाये प्राणी और हमारा लक्षमात्र वर्तव्य यह है कि हम उन-दुम्ने को मन्त्रमें और एक-दुम्ने में प्रम करें।"

१. एवं चिन्त। भावेऽपि न् विभे न विद्युत् ।

८

सुभनशील कला और ज्ञान

कला का काम कला की भावना को जपाना है। इसका सर्वोच्च कार्य न तो स्तुति करके किसीको बहुत ऊँचा उठाना और न मिथ्या करके किसीको नीचा बताना है। अपितु उन्हें मानवीय रूप देना है। समाकार इस कार्य को केवल मानवीय आत्मा के गुण मनीषियों में अन्तर्दृष्टि द्वारा भाँककर और उसके स्वप्नों और महत्वाकांक्षाओं को अंकित करके सम्पन्न कर सकता है। महान् कलाकार में साधारणीकरण की वह यही भावना होती है जिसके बिना कोई आर्यतिक ज्ञान नहीं हो सकता। वह एक मिन इतिहास में होकर भीने और अपनी कल्पना में उसको अनुभव करने का यत्न करता है। जब वह जीवन के मर्म पर अधिकार करने में सफल हो जाता है तब वह आत्मा के संघर्ष और व्यथा का प्रकट कर सकता है। तब वह बता सकता है कि वह आत्मा प्रलोभन के कगार पर खड़ी किस प्रकार डावा डोल रही है और और आत्मक के बधीभूत होकर 'हाँ' या 'नहीं' कहने में असमर्थ रहती है। वह अपने पापों को उनकी अपनी स्वाभाविक मम में पतपने पतने-धूमने और गुरमाने देता है। वह मानवीय जीवन की विस्तृता और विविधता का वर्णन कराता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत के द्वारा ब्रह्मांडीय स्थिति का एक निर्धारित क्षेत्र बन जाता है। वह स्वयं अपने स्वास के साथ स्वास लेता है। स्वयं अपने होंठों से हँसता है और स्वयं अपने अश्रुओं में वदन करता है। परस्पर-विरोधी अंकितबी प्रकट हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि आत्माएं एकत्र में नहीं हुई हैं और हम उनसे सहानुभूति अनुभव किए बिना नहीं रह सकते। संस्कृत के महान् कवि भक्तकृति का कथन है कि यद्यपि कवि सोम हास्य बना करपा जोष प्रेम इत्यादि विभिन्न भावों का वर्णन करते हैं, परन्तु वे सब वस्तुएं एक ही

मायाय तत्र—दरगा के ही विविध रूप हैं।^१

घण्टाई की बरबारी और श्रेष्ठ धारणाओं के उपोद्बन्ध की एक सही अनुभूति ही सम्पूर्ण कथा (लोकात्मता) का सार है। कष्टमहान् हमें बस्तुओं के केवल रूप और जीवन की धारणाओं में दूर से जाता है। यह मनुष्य की महानता की एक अनुभूति को इस बात को कि वह अपने मन के अन्दर ही अन्दर क्रिया बुद्धि महान् कर सकता था प्रकट करता है। यहाँ धारणा उन माटियों में जो करना और धारण का आद्यन्त करते हैं उनका ही धारणा नहीं है किन्तु कि कल्पे और उक्त प्रकार के साथ 'जीव और जीवमय' जैसे भावों में धारणा लेते हैं। 'पामप्टाक' हम उनका धारणा नहीं करता किन्तु कि हैमेट हासकि सोना ही समाप्त रूप में सुख है। ऐस्किपर अपने महान् पारिवारिक दोषात्मक भावों में जीवन के सम्पूर्ण एक स्वयं गढ़ा करके हमारी सहायुक्ति कष्ट महान्वासे सीमा के प्रति बसाता है। हैमेट की व्याख्या और विवेक अस्पष्टागिन नहीं है। बरीन्दिम और उरदूट दुर्गाचारमय जीवन बिनाते हैं। वे हैमेट के गिना की जगह कर लेते हैं। मिशमन पर अधिकार कर लेते हैं और हैमेट को उसके उत्तमपिथार से बचिन कर देते हैं। उसी माता के धारण की धारणा उसके मन पर छा जाती है। वह धारणाविषय की धारणा अधिमूर्त होता है और उसे बनाता है कि वह भी धारण ही व्याधिचारिणी बनती है। धारणा को भी धारण नहीं है किन्तु वे गंगा काव्य होना है। वह उपधाधिनिषों के मन में प्रविष्ट होना का बहना है उसे पागप कर देना है और उसकी मृत्तु का धारण बनना है। उसकी इच्छाधरिण समाप्त हो जाती है। वह पुनियुक्त रंग में एक कर पाने में असमर्थ है और उसके अन्तिम में विचारों की कूमरपरिमाणु बनती है। वह जीवन और मनुष्य पर दृष्टिपात करता है और मोक्षता है कि इन दोनों में म जीवन-धारण बुद्धि है "होना या न होना। मीरवेस एक जीवन रत्नमय न म सुखता है और

१. कष्टमहान् काव्य पर लोकात्मता, मन्वा बुद्धि इत्यादि काव्य विचारों का नुरतान्त-अन्तर्गत अन्तर्गत मन्वे कथा का मीरवेस इत्यादि उदाहरण।

जीवन पर इस टिप्पणी के साथ समाप्त होता है कि यह एक निरर्थक कथा है, जिसमें कोसाहल तो बहुत है परन्तु जिसका धर्म कुछ भी नहीं है। सोबेलो अपनी पत्नी को मार बाधता है, आत्महत्या कर लेता है और सर्व नाश कर दासता है। केवल इसलिए कि एक ईप्यन्तु अज्ञानायक बतुपाई से उसपर विश्वास जमा लेता है और उसकी दुर्बलताओं के लाभ उठाता है। उस दशा पर विचार कीजिए, जिसमें कि मनुष्य कुछ ऐसे मनोवैगों में फँस जाते हैं जो उनकी बलिबलि को बांध देते हैं। उनकी प्रतिरोध और विचार की शक्ति को और उनकी धारणा पर जो संस्कार छा गया है उसके विरुद्ध संघर्ष करने की उनकी इच्छा को क्षीय कर देते हैं। अपने मार्ग पर चलते हुए मनुष्य तक उनके विरुद्ध लड़ते प्रतीत होते हैं। ऐसा मयता है कि वे अपने विनाशकी घोर शकल दिए जाते हैं। हम इन सबको बहुत करुण समझते हैं और फिर भी उन्हें उदात्त मानते हैं। ईश्वर हमसे और सोबेलो हमे हमारे साथ उनकी भिन्नता के कारण नहीं। यद्यपि हमारे साथ उनकी समानता के कारण प्रभावित करते हैं। उनके कार्यों और उनकी परिस्थितियों के मध्य पूरा समस्वरता है। गास्तबर्ची के 'छोटाईट सागा' को सीजिए। सोम्व और इरिन का संघर्ष जो सारी कहानी की ठह में विद्यमान है, जगत् के विरुद्ध मानव प्राणियों के संघर्ष को सचमग उदघा ही प्रकट करता है जिसका कि वेस्काइलठ का कोई भी शोकाग्र नाटक। जहाँ एक साथी में यौन-याकर्षण का नितागत समाज हो बहा स्वभाव में निहित विषयम (घुषा) पर विजय नहीं पाई जा सकती। उसके पात्र अपने आपको ऐसे रूप में प्रकट करते हैं। मामी के मुस और पुष की अपनी पूर्व निर्धारित समस्वरता में रह रहे हैं। केवल वे लोग ही बाह्य रूप से उनकी भिन्ना कर सकते हैं, जो कल्पना और वास्तविक समझ से दूर हों। हम जीवन की एकता से प्रभावित होते हैं। अपनी सब प्रयत्नित धर्मिकधर्मियों में यह जीवन एक ही है। ईश्वरता मत्त जो क्योंकि सब कुछ अन्वहार में डूबा हुआ है। ऐसे कोई बाप नहीं हैं, जिनके कि हम स्वयं प्रयत्नशील न हो सकते हों। दुरे से दुरे प्रयत्नशील जिन प्रयत्नों के लिए बोधी होते हैं वे केवल उन

दुर्बलताओं की कुछ अधिक बढ़ी हुई अभिव्यक्तियाँ-मात्र हैं जो हम सबमें विद्यमान हैं। वह याद रखना मना होना कि हमें अन्य मानवों या आत्माओं के जीवन और दशाओं का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है। हम किसी अन्य मानव प्राणी को तब तक ठीक-ठीक नहीं जान सकते जब तक कि उनके हृदय के अन्तर्गत एतन्व तक प्रकट न हो जाएँ और ऐस प्रकट रहस्य हो सचत है जो अन्त कास तक भी रहस्य हो बने रहे। यदि हम आत्माओं को जतनी सरसता से अनागत कर सकत जितनी सरसता से हम धरती के अनागत कर सकते हैं तो हम कुछ कम बठार हाने। एक अर्थ में सुकृत का यह कथन कि साध पापाचार अर्थात् अशुभ होता है सही है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति में अशुभ की आवाजा होती है और यदि हम कोई सुधई करते हैं तो वह हमलिए कि हम उनसे अशुभ होने की आशा करते हैं। दुष्ट पाप रण अन्त अन्त के कारण होता है।

आचरणवाद जो आचरक अधिकाधिक अज्ञान की वस्तु होता आ रहा है यह मानता है कि आध्यात्मिक जीवन को अशुभ बाहर से पूरी तरह जान सकता है। इस दृष्टिकोण में व्यक्ति अन्तर्गत के आध्यात्मिक अज्ञान की उपस्था कर दी गई है जो नहीं कहा जाए तो आत्मा का अर्थ है। हम अपने विषय में जितना कम जानते हैं। चाहे हम जितने ही ईमानदार क्यों न हों परन्तु क्या हम अपनी दशा दूसरों को समझा सकते हैं? हमारे अपने स्वभाव की दुर्बलताएं स्वयं हमने बहुत ही सत्यतापूर्वक छिपी हुई हैं और हम सिध्या अस्मिन् और सिध्या का अर्थ पारण करके दूसरों से अज्ञान करत हैं।

इसके अतिरिक्त क्या हमें मनुष्यों की दुर्बलताओं के लिए कुछ न कुछ कृतम नहीं होना चाहिए? यदि हमारे अब और पूजता ही पूजता होत और हमारी अंत बेचस अन्तों और नायकों से ही हमारा करती तो साधक ही अज्ञान ही अज्ञान हार जान। हमें प्रयत्न करने की प्रेरणा अभी जितनी। जब हम यह बेचते हैं कि अन्त के अज्ञान महानुरागों में भी हमारी ही अज्ञान दुर्बलताएं भी अज्ञान से और उनके अज्ञान भी अज्ञान और अज्ञान

की बड़ियाँ घाई थी। उसकी भूलें धीरे-धीरे हमें सातवना देते हैं। वहाँ के हार गए वहाँ हार जाना कोई सज्जा की बात नहीं है। मनुष्य सुख-धर्म में से मुँह-धर्म से मुँह-धर्म की ओर बढ़ता है और हममें से गिरे से गिरे मोक्ष भी उसी मिट्टी से बन है जिससे कि ऊँचे से ऊँचे लोग बने। महान् आत्माओं और धीरे-धीरे मनुष्यों में एक वास्तविक आत्मीयता है और यही वस्तु है जो मानवीय जीवन के गौरव और मूर्खता को बढ़ाती है।

कष्ट मनुष्य का बंध नहीं, अपितु पुरस्कार है। यह सब प्रकार के सुखनशील प्रमाण का एक आवश्यक सहायक है। सहन करने में असमर्थ होना नैतिक दुर्बलता है। हम दुःख का निमित्त करने की आवश्यकता नहीं है परन्तु दुःख का सामना कर पाना स्वतंत्रता का प्रमाण है। बर्म लयन और उपस्था के लिए व्यर्थ ही प्रायश्चित्त नहीं करते। यदि बर्म हमसे यह कहता है कि हम दास्यत्व मूर्खता के लिए जीवन की पक्षी वस्तुओं का परिवार कर दें तो यह इसलिए कि उसका यह विश्वास है कि दुःख को स्वैच्छापूर्वक वात-वृद्धकर दिए गए बलिदानों द्वारा ठीक किया जा सकता है और सत्य की स्थापना की जा सकती है। यह यह मानता है कि दुःख एक ऐसी वस्तु है जिसका कोई इलाज नहीं है और एक उदात्त भावना को मनुष्य के मन को जोड़कर उसे बड़ी कारगरता है, त्याग देना चाहिए।

दुःख तथा दुर्भाग्य नहीं होता। बहुत बार यह विश्वास में हमारी सहायता करता है। दुःख की बहुराशियों में हमें प्रकाश प्राप्त होता है। हम दुर्बलता और सत्य के मर्मस्पर्धी बलों में से मुँह-धर्म मुँह-धर्म है। यदि हम जीवन के प्रथमकारण और नष्टि सत्तों में से न मुँह-धर्म तो बहुत सम्भव है कि हम कठोर बन जाएँ और अभिमान तथा साधुम्यता के विचार बन जाएँ। जब हम भाष्य के सम्मुख हार जाते हैं तभी हम विश्वास के सम्मुख मौन और विनीत होकर अपना सिर झुकाया सीखते हैं। यह विश्वास कोई विधि-धर्म से हिन्दुओं में ही नहीं पाया जाता।

इसका संकेत 'प्रोबर्म्स' (कहलकठे)^१ में मिलता है और ऐश्वरीश्रवास्त्र (पमनुस्त्रके) में विकसित किया गया है 'आ कुछ तुम्हारे गिर पर जाता जाता है उस स्वीकार करो और अब तुम्हें अपमान सहना पड़े तो देर तक बच रहो। बात यह है कि मोन की परल धाम में होती है और श्रेष्ठ मनुष्यों की परल विपत्तियों की मट्टी में जाती है।' अब हम ऐसे लोगों न या पात्रान मिलते हैं जिन्होंने बच रहे हैं उन लोगों न जिन्होंने मन की उन व्यथाओं को महा है जोकि गरीर की यन्त्राणां की धरणा नहीं अधिक समीर होती है, तब उनक प्रति हमारी कृपा में श्रद्धा का प्रग भी मिला जाना है क्योंकि वे विमान किसी रूप में मनुष्य के मर्म के निकट पहुंच चुके होते हैं। हमारी दृष्टि म जिन लोगों का गहमे अधिक मूष्य हागा वे सोय ब है जिन्होंने कठिनायों और निराशाओं का सामना किया है उन लोगों का गरीर जिनक हृदय न एक भी मरुची व्यथा नहीं मही जिनके जीवन म बार्द मयानक चोट नहीं पड़ी। हम मयना यह धय नहीं है कि मनुष्य का केवल बच के लिए कण्ट सहना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि जिन दुःख और कण्ट म बचा जा मने उसमे दूर रक्षा जाए। परन्तु यदि प्रावरमक हो ता मनुष्य को स्वय कण्ट सहकर जी जीवन की कृष्णाओं इसके समस्याओं और कण्टों का दूर हटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

६

विश्रोही धारणा

यदि हम एव ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं जिनमें पैमाना देनेवाले और पाव करनेवाले लोग उच्चतर प्राणियों के रूप में एक-दूसरे को धया

१ ३ ११-१२।

२ २, ४-२।

करनेवाले माइनों के रूप में क्वात्तरित हो जाएं और इस प्रकार वे अपने-
 आपको मिथ्यात्व शेष और अपराध से मुक्त कर सकें तो हमें श्रीम का धम्मत्त
करना चाहिए। धम्म के मर्म-विस्वादी (प्रास्तिक) स यह धारा भी
 जाती है कि वह पुरातन और पीर्न के विरुद्ध बिरोह कर दे और उसे धातो-
 कित करने के लिए कष्ट को स्वीकार करे। केवल के सोग जो आत्मा की
 धनुर्बर दृष्टता से रहित है दूसरों के शोष को सहने के लिए तैयार हो सकते
 हैं। जो राष्ट्र की लज्जा अपने तिर से सफटा है वह सच्चा नेता है। कष्ट
 का बरण महान सौप करते हैं। अज्ञानु धम्म मने ही वह शरीर से
 दुर्बल हो पीषन की कठिनाइयों का सामना करने में और जलपर विजय
 पाने में धान्द धनुमय करती है।

जीवन का उद्देश्य सुमनात्मक बलिदान है। जोस का सारमूठ विचार
 यह है (जो यहूतियों और यूनानियों के लिए इतना उपहास का विषय बना
 रहा था) कि जो हमसे सच्चा प्रेम करता है, उसे हमारे लिए कष्ट सहन
 करना होना और वहां तक कि मरना भी होना। यह सब जीवित मर्मों का
 सारमूठ सत्य है। पाप के ऊपर कष्टसहन और मृत्यु हाथ विजय हमें केवल
 'वेरसीमेन' के उच्चान गीतमनुज के महामया उस कोठरी में जिधने सुकरात
 न हुआइल पिया था ही दिखाई नहीं पड़ती अविनु प्रत्य मनेक अज्ञात
 स्वार्थों पर भी दिखाई पड़ती है। केवल यह जो कष्ट सहन करता है सत्य
 रूप में प्रेममय और सच्चे रूप में दिव्य है। मनुष्यों के लिए यह स्वाभाविक
 ही था कि अहंमि बुद्ध को जिधने सबसे अधिक मूर्खवान माननीय सम्मन्धो
 को तिलांजलि दे ही थी और ईसा को जिधने कि कष्ट सहन पिना और
 अपने प्राण तक दे दिए, देवता मान सिधा कारण यह है कि समूने लजीव
परमात्मा के धास्वत सार को ब्रह्मट किया जोकि प्रेम है। सब मर्म पुकार-
 कर कहते हैं कि वे बन्ध हैं जो कष्ट सहते हैं। कष्ट सहना धार्मिक
 जीवन का सार है। यह वास्तविकता का सही रूप है। यह वह रक्त है जो
 हम सबको भित्ताकर एक करता है। कौंठ इस बात का चोटक है कि बुद्ध
 अपने सबीण विजय की बड़ियों में ही धर्मपूर्ण प्रेम और कष्टसहन की

पवित्र द्वारा सुनिश्चित रूप से पराश्रित हो जाती है। जो लोग ईसा के प्राण का अनुकरण करते हैं उन्हें आत्मिक के बजाय प्रेम की और सुख-सुविधा की अपेक्षा कष्टसहन को अधिक प्रसन्न करना चाहिए। उन्हें प्रेम का बरदान पाने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए जिसका धर्म है—उदारता प्रीति करना।

धर्म हमें बताता है कि धामूलभूत पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक मूल्य गीत ऊर्जा वास्तव के घाय सयोग से प्राप्त होती है। बन्धुत्व और मेधा की भावना धाम्यात्मिक स्रोतों से उत्पन्न होती है। परोपकारवाद उन धारणना का स्थान नहीं में सजता जिसस कि बहु उत्पन्न होता है।

एक धर्म में हम बहु सजते हैं कि परमात्मा आकि इस सारे संसार का जनक है और ओ इस विद्व की बतना है पापविश्व मीतिक पदाय पर शिष्य कर रहा है जिगमं से कि उमे अपने-आपको मुक्त करना है और हमें भी मुक्त करना है। बहु स्वयं हममें स प्रत्येक के धर्म कष्ट सहन कर रहा है। जब धारणा ओकि इस नगर मीतिक तत्त्व में जन्मी हुई है मुक्त हो जाएगी जब सन्नाविश्व विद्व-धारणा या विद्व की धारणा प्रत्येक धर्म की वास्तविक श्रेयता बन जाएगी जब एपोसल (ईसा का मुख्य शिष्य) के धर्मों में परमात्मा 'सर्वोसर्वा बन जाएगा जब एषाम्प में सीमित परमात्मा नर्वे एवरवादी परमात्मा बन जाएगा तब इन कष्टसहन का धर्म ही जाएगा।

इन बीच में हमारे कष्ट सहनेवाले बिग्रीहियों का निम्नस्त्र रहकर बलघानियों को चुनौती देनेवालों का धीर उन विनम्र प्रनियेप करनेवालों का है, जो सत्य को नीति से ऊपर मानवता को देय से ऊपर धीर प्रेम की बल-प्रयोग से ऊपर रखते हैं। मुक्तों की धर्मिकार-बिबिधों के प्रति धर्म श्रेयता पाने के लिए धरना पुण्यत्व या धरना स्वभाव केचनेवाले धर्मों के प्रति शक्ति बद्धता धीर उनका उन लोगों के प्रति ओ न विहनत करते हैं धीर न मून वातते हैं धीर फिर भी जिनके पास पर्याप्त नर्पति है जिनके इच्छानुसार अज्ञा सजने हैं, मदाशान्दुम शीघ दिव्य बस्तु हैं। धर्म उन बिग्रीहियों को धीरज बंधाना चाहिए, ओ एक नमितवत बसा, बिग्रीवत जीवन

निर्दोषतर प्राप्ति के निमित्त बौद्धाचार्यों का अनाकरण करते हुए, विषय
 तार्थों का परास्त करते हुए और मिथ्या के स्वात पर धृत्य को स्थापित
 करते हुए युद्ध करते हैं। सब धर्म एक स्वर में भले ही विभिन्न भाषाओं में
 बोधना करते हैं कि हमें एक ध्यानव्यवस्था और के लिए यहाँ नहीं भेजा गया
 और कहा तक कि यह एक ऐसी भाषा भी नहीं है जिसमें कि मनुष्य समझते
 और मिथ्या का ह्रास पकड़कर सदा धाने बढ़ सके अपितु यह तो एक
 युद्ध है, जिसमें कि हमें मूर्खता और स्वार्थ की शक्तियों के विरुद्ध लड़ना है।
हमें कृष करते वैमिक बनना है—सत्य के वैदिक को प्रेम को प्रपना धरुत्र
बनाकर सज्जते हैं और विरुद्ध में सब तक उपलब्ध-पुनर्लभ करते रहते हैं जब तक
कि पृथ्वी पर परमात्मा का राज्य स्थापित न हो जाए।

पाँचवाँ व्याख्यान

रवीन्द्रनाथ ठाकुर^१

सबसे पहल मैं आयाजन समिति की उस हृषा के लिए धामार प्रशंसित करना चाहता हूँ जिसके फलस्वरूप मुझे इस सप्ताह की सप्ताहों में भाग लेने और धारा इस सम्मेलन का समापन करने का अवसर मिला। मुझे इस बात का खेद है कि मेरे स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति मराम और ऐसा व्यक्ति नहीं है जो कवि की मूल बंगला-रचनाओं में सुपरिचित हो पर मैं महाकवि के महत्त्वपूर्ण काम के प्रति और देग तथा मारे समार पर उमक पहले प्रभाव के प्रति अपनी शक्यता प्रस्तुत करने के लिये मुमकसर के लिए शुकन भी हूँ।

१

साहित्य की महता

महान साहित्य की यह एक निराली धान है कि यह राजाओं और राजबंशों को धरेगा वहीं व्यक्ति बिरस्मानी होता है। इतिहास उस मानवीय भावना की शक्ति का साधन है, जो राजबंशों धपका सामिक बिरवाओं की धरेगा वहीं व्यक्ति दीर्घकाल तक बनी रहती है। हमर का राजनीतिक जयन् धर मर बुना है परन्तु होकर का गीत धारा भी जीवन है। रोम का बमव मूल हा बुना है परन्तु बजिन का वाक्य धारा भी सधाम है।

१ दिम्बर १९३१ में बनकट में रविवारा ठाकुर के सपरवे अध्यक्षता धररक के सम्मेलन में हुए सम्मेलन में दिशा गण बधरीत धारा।

कामिदास के स्वप्न आश्रम भी हमें एक समीच भारतीय की पुकार की भाँति मानवीय सम्बन्धों में कबला की अपनी एक तीव्र भावना द्वारा इवित कर देते हैं जबकि वह उन्मयिनी विचका कि वह प्रसंकार या आश्रम केवल उसकी रचनाओं में ही स्मृति छेप रह गई है। मध्यकाल के महान् शक्ति धाली सामन्त विस्मृत हो चुके हैं परन्तु बाले का तीव्र आश्रम भी पसन्द किया जाता है और एलिजाबेथ का मुन्य संकल्पिमर के कारण तब तक स्मरण किया जाता रहेगा जब तक कि अंग्रेजी भाषा विवित है। जब हमारे राजा और नता विस्मृत हो चुके हों तब भी रबीग्र हम अपने मंगीत और काम्य द्वारा मुग्ध करते रहेगे कारण यह है कि अंग्रेजी के भारतीय हैं फिर भी उनकी रचनाओं का मूस्य किन्ही भारतीय प्रबला राष्ट्रीय विरोधताओं में नहीं अपितु सार्वभौमता के उन तत्त्वों में निहित है जो सारे संसार को समान रूप से प्रभावित करते हैं। उन्मुक्ति जीवन के माधुर्य में और सम्पत्ता के उत्कथ में बुद्धि की है।

२

अध्यात्म पर बल

इस परिवर्तन के काम में अनेक तत्त्व भारतीयों के लिए रबीग्रताश की बासी एक आदवासन और प्रेरणा रही है। जब हम विपन्न आसामो के भार से बने हुए हैं और विज्ञान तथा संवदन की विजयों से उद्बाल-से चक्रे हैं जब हमारे मन अपना आधार और विक्रान्त छो बैठ है तब भी हमारे हृदयों में धाधा और हमारे मन में उरसाह जगते धाते हैं। वे बताने हैं कि नले ही हमारे तिर शत-विद्यत हो गए हैं परन्तु वे नीचे नहीं मुके हैं और सचसता का मूस्य सम्पत्ति और सत्ता के नाश से नहीं घाँपा जाना चाहिए। सम्पत्ता की सखी कसौटी आध्यात्मिक औरव और कृष्णहृत् की शक्ति है। सम्पत्ति सत्ता और कार्य में सत्ता जीवन की आनुपमिक वस्तुएँ हैं के ।

स्वयं जीवन नहीं है। महत्त्वपूर्ण वस्तुएं वस्तुस्थितिक वस्तुएं हैं जो बिना किसी मजहन की पहुंच में परे हैं।

रबीन्द्रनाथ ने प्रकृत जीवन और सामाजिक व्यवस्था के केन्द्रक में प्राथमिक मूल्यों की सर्वोच्चता पर जो प्राथमिक ध्यान दिया है वह भारतीय विचारकों की तुलना परम्परा के समुद्रतल ही है। उनमें हमें भारत की घातक बाधी मुनाई बड़ती है जो पुछानी होन पर भी गई है। मान्य क उदात्त-बढ़ाव और इतिहास की उभय-पुबल के बाबजूद भारत ने अपनी मूल धारणा को खर्चीक बनाए रखा है। समुच्च की धारणा को भ्रम में उतारना भौतिक शरीर या बुद्धि नहीं समझ लिया जाता चाहिए। बुद्धि मन और शरीर की प्रपेक्षा अधिक गहरी भी कोई वस्तु है—वह वास्तविक धारणा, जो अज्ञान विषय सम्य और सुन्दर के साथ एककार है। उसको अपना मध्य बनाकर चलना और उसे एक सर्वोच्च विद्यमानता बनाना धर्म का प्रयोजन है। अपने-आपको पवित्रता प्रेम और शक्ति द्वारा उस धारणा के समुच्च प्रतिनिधित्व करना नीतिशास्त्र का मध्य है। धरने प्रायका उस ग्राहक मला के समुच्च में बालना हमारे मुक्तिरूप स्वभाव की निष्पत्ति है। समुच्च को न केवल तकनीकी रूपाना प्राप्त करनी है अपितु धारणा की महानता भी प्राप्त करनी है।

जब हम शक्ति में सैर के लिए निकलते हैं और धारणा घातक बहरे शारीर पर तैनात शरों को देखते हैं तो हमारे मन में उनकी सुन्दरता के समझ एक धारणा का भाव। उनकी अशरिर्बर्ननीयता के सम्मुख पुन्यता का भाव और उनकी विनाशना के सम्मुख निनाश। मध्यना का भाव प्राप्त होता है। हृदय की महानता एक जानी है। दशम मध्य जाता है और हमारे सम्मुख अस्मिक को एक धरना-सा मगता है। हमारे मुच्च शक्ति और विनाश। धरनीय मध्य में शक्ति और प्रयोग जाने लगती हैं। जब हम उत्कृष्ट बाधक गुणक हैं या मानवीय धारणा के अन्दर भावते हैं तब भी एक ऐसी ही उद्दिष्टता एक ऐसा ही स्वामिगेष समुच्चक हाता है। धरन और धर्म

है। आज भौतिक प्रवृत्ति और वैज्ञानिक जगति के बावजूद हमें जो इतनी अस्थिरता संघर्ष और अस्तव्यस्तता दिखाई पड़ती है, वह इती कारण कि हमने जीवन के इस पहलू की उपेक्षा कर ली है। तीन घण्टाभिरों से भी अधिक समय में वैज्ञानिक आविष्कारों और खोजों में अधिकधिक समृद्धि उत्पन्न की है। अकाल समय समाप्त हो चुके हैं जगतस्मा बड़ी है और प्लेन और महामारियों की भी बीषण की दुःखद घटनाओं पर निर्बन्ध कर लिया गया है। जब सामाजिक व्यवस्था के विषय में विश्वास और सुरक्षा की भावना सखार में लौली तब कुतूहल और अन्वेषण की भावना जिसके कारण वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों में मुख्यतः विषय प्राप्त हुई थी जीवन की अपेक्षाकृत गहरी वस्तुओं की ओर बड़ी। सीमा ही संसार का रहस्य और काव्योचित सौख्य जाता रहा। कठोरता और पाठविकता का विज्ञान और बड़े व्यवसायों का एक अद्भुत नया संसार उठ सड़ा हुआ जिसने प्रेम सौख्य और आनन्द की उत व्यवस्था को विह्वल कर दिया जो कि धारणा के विकास के लिए बहुत ही आवश्यक थी। प्राकृतिक मन को सम्बेहवार और अज्ञानवाद बहुत ही प्रिय लगने लगे हैं। सम्बेहवारियों और अज्ञानवादियों (जो इस विषय में सम्बेह करते हैं कि विद्व के पीछे कोई सक्रिय विद्यमान है या नहीं) और उन धार्म्याग्निक घास्तिकों के बीच जो यह कहते हैं कि सबसे महत्वपूर्ण वास्तविकता विद्व के पीछे विद्यमान है तब रहे संघर्ष में रनीश्रनाब विद्यमे लीकों के साथ हैं।

मुकराठ से मिलने के लिए गए एक भारतीय दार्शनिक के सम्बन्ध में एक कहानी प्रसिद्ध है। यह प्लेटो या जेनोफन को मिला हुई नहीं है यद्यपि ऐरि स्टीफेनीय की है जो ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी में हुआ था। यह बताता है कि मुकराठ ने उस भारतीय अतिथि का बताया कि अछना (मुकराठ का) काय सोर्मी के जीवन के सम्बन्ध में आश्चर्यचकित करता है और इसपर उस भारतीय ने मुकराठकर कहा कि जो व्यक्ति ईवीय वस्तुओं को नहीं समझता वह मानवीय वस्तुओं को भी नहीं समझ सकता। सम्पूर्ण परिधि परम्परा की दृष्टि में मनुष्य मुक्त एक भौतिक प्राणी है जो उर्ध्वगत

हंग से सोच सकता है और उपयोमितावादी सिद्धांतों के अनुसार काय कर सकता है। पूर्व में बौद्धिक योग्यता की अपेक्षा धार्मिक ज्ञान और सहानुभूति का महत्त्व अधिक माना गया है। जो हज़ारों लोग बोलते हैं उनमें से कोई एक सोच पाता है जो हज़ारों लोग सोचते हैं, उनमें से चायद कोई एक परलता और समझता है। मनुष्य की विशेषता उसकी यह समझने की क्षमता ही है।

भौतिक उत्थिति और बौद्धिक वसता से हमें समतोप नहीं हो सकता। यदि हमारे पास खूब बड़ी भेठी हो और मुखाद परिबहन हो और प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना विमान और रेडियो हो यदि सब रागों का उन्मूलन हो जाए यदि शामगरी को बकारी-बेतन और केदान मिमने मये और प्रत्येक व्यक्ति खूब मम्बी धायु तब जीवित रहने मगे तब भी अपूम महत्वा कांताण और मनुष्य सासताण रहनी ही। मनुष्य केवल रोगी या बदन बिडता से जीवित नहीं रहता। सम्भव है कि हम ससार को धाधुनितम और अधिरतम दसतापुवत बैज्ञानिक पद्धति से पुनवटित कर में और हमें एक विमान अत्रसायमासा बना दें जिसम कि मानवीय परमाणुओं की सब विविध गतिविधियाँ इस प्रकार सुम्भवस्तिथ हों कि उसमें तहताने के कमरों में काम करनबासी रमोईपर की लोकरातियों और घरेनु काम काज के लोकर मइकों से लोकर सबगे ऊपरमी मंत्रिस में लील्प्य-कथों म शृंगार करती हुई सुन्दर स्त्रियों तक प्रत्येक बर्ष अपना काम यथोचित रीति से कर रहा हो और यह भी सम्भव है कि हम मानव-समाज का एक भीटी-दम में कपालरित करने में सफल हो जाए फिर भी मनुष्य मान साण परम साणों के मिण प्यास रहेनी ही। उन नई विश्व-व्यवस्था में भी बन्ध हमते और रोते रहये स्त्रियाँ प्रेम करती और बच्ट सहनी रहनी पुण्य मुड और सपय करते रहेगे। मनुष्य की मम्बी महानता उसकी विनमता के कारण है—उसके अध्यान्त मसारों में धरपट्ट धार्मिकों के साथ इकर-इकर मन्कते रहने में। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जिसकी इच्छा विविध है। यह मनुष्य और मनुष्य दोनों मनुष्यों की विचारधाराओं से मन्क है।

वहाँ वह एक घोर प्राकृतिक व्यवस्था का एक धर्म है वहाँ उसके धर्मर-
मात्मा का बीज भी है, जो उसे प्राकृतिक प्राणी होने मात्र से अद्यत्पुष्ट
बनाए रखता है। वह अपने धर्मों में जीमान्त देव का एक प्राणी है, जिसके
धर्मर-पाशविक इच्छाएँ और धार्मिक भावसाएँ, दोनों हैं और एक ऐसा
जीवन जो पूर्वतया पाशविक इच्छाओं को पूर्ण करने में रत हो उसे
धाम्ति नहीं दे सकता।

अपने काम और परिश्रम के ईशिक जीवन में, जब वह ठेठ ओठठा है
या किसी राज्य का शासन करता है, जब वह सम्पत्ति बढ़ता है और सत्ता
प्राप्त करने की चेष्टा करता है, मनुष्य अपने वास्तविक रूप में नहीं होता।
इस प्रकार की गतिविधियों में वस्तुएँ प्रभाव होती हैं। मनोपार्जन और
परिवार के पोषण में उसका सारा समय और शक्ति लय जाती है। धारवत
और अशुभ वस्तुओं के लिए कोई प्रवृत्ति हो नहीं मिलता। और फिर भी
ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं जो अगम्य और बित्तों की इस धाम्ति को
बिलुम्ब कर देती हैं। ऐसी घटनाएँ, बिनके कारण रहस्य की भावना और
अनिश्चितता की अनुभूति फिर भा बनकती है। जब मनुष्य मृत्यु के कारण
रोग में होता है अथवा निराशा के कष्ट में होता है जब कोई निरवस्थ
व्यक्ति विश्वासपात करता है अथवा प्रेम की मिथ्या भंग हो जाती है, जब
जीवन बेस्वार्थ और निरर्थक हो जाता है तब मनुष्य अपनी बाहें धाकाध
की ओर वह जानने के लिए फैलाता है कि क्या अन्धकारपूर्ण धर्मों के पीछे
कोई उत्तर देनेवाली शक्ति भी विद्यमान है या नहीं। महान्त पुरुषान् धार्मि-
क्यवर्तनमस-वरस्तात्—जब समय वह अपनी बेलमा के एकान्त में प्रचुरता
और तीव्रता के राज्य में अगवान के सम्पर्क में जाता है। वह सम्पर्क आमोह
और प्रेम के अगत् न होना है जिसमें मौन के सिवाय और कोई भाषा नहीं
है। यह ध्यान का अन्त है जो अपने-आपको अचिन्त रूपों में प्रकट करता
है, प्राणरूपम् अमृतं यद् विधाति।

पालवीय अनुभूति का काम्य, जीवन की वास्तविकताएँ, जो इसके
आहम्बर-मात्र से पूरक हैं एकाग्र में ही उपलब्ध होती हैं। जब हम धारमा

से दूर हट जाते हैं तब हम उस एकमात्र वास्तविकता से दूर हट जाते हैं जो हमारी पशुत्व के अन्धकार है। मनुष्य अपने धर्म और अपने प्रेम में ही अपने वास्तविक रूप में होता है। ये दोनों बिलकुल वैयक्तिक और अनिच्छित विशिष्ट और पवित्र हैं। यदि हमारा समाज इस धार्मिक शरणाग्र पर भी ध्यान देने करने का प्रयत्न करे तो जीवन का सारा मूल्य और वास्तविकता जाती रहेगी। मनुष्य अपनी सम्पत्ति में अन्य लोगों को सम्झौदा बना सकता है परन्तु अपनी आत्मा में नहीं।

आज हम इतने बरिष्ठ हो गए हैं कि हम आत्मा की निधि को पहचान तक नहीं सकते। अपने सबसेत जीवन की दौड़-भूप और कोसाहल में हम अपने अस्तित्व के कम मुनाई पड़नवाले तत्वों की ओर ध्यान नहीं करते। धार्मिक-पुलक विक्षोभकारी मनोबोध अन्तर्दृष्टि की झलकें य वे बस्तुएँ हैं जो हमारे सम्मुख उस रहस्य को प्रकट करती हैं जोकि हम स्वयं हैं और इनके द्वारा हम बस्तुओं के मर्म को हृदयंगम करते हैं।

केवल धार्मिक मगवाने व्यक्ति ही जीवन के धार्मिक धर्म को समझ सकते हैं। धार्मिक-मूल्य निष्ठा की बात है—अपने प्रति-ईशानशरी। हमें प्रणाम को अन्धर घाने देना चाहिए, जिसमें वह आत्मा के सुष्ठु स्थानों को आशोक्ति कर सके। हमारी अपटीकित्या और प्रतिज्ञाएँ वे रोके हैं जो हमें मृत्यु से दूर रखती हैं। हम उन बस्तुओं के साथ ता अर्थिक परिचिन हैं जो हमारे पास हैं और उनके साथ कम जोकि हम स्वयं हैं। हम अपने मन्द एवान्त में घाने ही मम्मूग अकेम लड़े हाने स करते हैं। हम अपने गाने मय का भीषणों और मारक इम्पों द्वारा उत्तवना या सेवा द्वारा ज्ञान की बागिस करते हैं। हमें अपने-आरको एकाग्र करने धार्मिक जीवन का विचार करने और अपने धारवा शरीर, मन और बुद्धि के बाह्य लोगों से बाह्य विचार देने के लिए प्रयत्न करना होता है। तब हम अपने अन्धर की आत्मा का देगते हैं और तब हमें धार्मिक गान्धि प्राण हा जाती है। धर्ममूर्तिता का धार्मिक धार्मिक जीवन का मूल आधार है।

जब तक हम बहिर्मुख जीवन बिताते हैं, धीरे धीरे अपनी धार्मिक बहुराइयों की बाह नहीं लेते तब तक हम जीवन के धर्म अथवा धात्मा के रहस्यों को नहीं समझते। जो लोग ऊपरी सतह पर जीते हैं, उन्हें स्वभावतः ही धार्मिक जीवन में कोई अड्डा नहीं होती। वे समझते हैं कि यदि वे धर्म को धार्मिक रूप में स्वीकार कर लें तो धर्म के प्रति उनका कर्तव्य पूरा हो जाता है। इस प्रकार की धार्मिक पराधितता सच्चे धार्मिक जीवन के साथ जिसका मूल आधार पूर्ण ईमानदारी है मेल नहीं खाती। स्वतन्त्र विचार से सृज्य जीवन किसी धार्मिक प्राणी को धार्मिक नहीं वे सकता। धार्मिक निष्पत्ति का प्रभाव ही हमें इस बात के लिए प्रेरित करता है कि हम धार्मिक सत्य के सम्बन्ध में उन बातों को स्वीकार कर लें जो दूसरे सोम हमें बताते हैं। परन्तु जब एक बार व्यक्ति धार्मिक स्वतन्त्रता के साथ सत्य का अनुसरण करता है और अपने अन्दर ही एक केंद्र बना लेता है तब उसमें इतनी काफ़ी शक्ति और स्थिरता आ जाती है कि जो कुछ उसपर बीते उसका वह मुकाबला कर सके। वह प्रतिकूल परिस्थितियों में पड़ जाने पर भी अपनी धार्मिक शक्ति और शक्ति को बनाए रखने में समर्थ होता है। मानवीय प्रयत्न का अन्तिम लक्ष्य धात्मा की परम प्रशान्तता है और यह केवल उसके लिए ही सम्भव है जिसे सृजनशील धात्मा में बहुरी अड्डा हो और इस प्रकार जो सब शूद्र सामंसाधों से मुक्त हो। स्वभावतः पुराने पन्थी धर्म का बाह्य धर्म-विश्वास के रूप में बाह्य कर्मकांड के रूप में उसके लिए लक्ष्य कोई धर्म नहीं होता।

३

जीवन के लिए आग्रह

परन्तु धार्मिक जगत् में रहने का वह धर्म नहीं है कि हम इस संसार की वास्तविकताओं के प्रति उदासीन हो जाएं। भारतीय विचारक अनेक बार

इस सामान्य प्रसोचन के धिक्कार होते रहे हैं कि आत्मा ही असली वस्तु है और जीवन एक निरर्थक भ्रम है और मनुष्य के बाह्य जीवन और समाज में सुधार के लिए किए गए सब प्रयत्न मूर्खता-मात्र हैं। बहुधा उस निरस्तसाहजानी मनुष्य के धार्यों की प्रयासा की जाती रही है जो इस संसार की सारी गतिविधियों का परित्याग कर देता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारत ऐसे मूर्ख व्यक्तिओं की सङ्घटि का स्वसंभ बन गया है जो उस पृथ्वी पर पसते हैं, जिसपर मूर्खों का निवास है। जो कोई अपने-आपको संसार की गतिविधियों से पूरक मानता है और जो इस संसार के दुःखों के प्रति धसबेरनमान है वह सच्चा मानो नहीं हो सकता। धूम्य में बर्मे का धाचरण कर पाना धमम्भव है। धाम्प्यारिमक धानुदुष्टि सामान्यतया नाम-रपमय जगत् में धरुधरुई के लिए एक नई शक्ति के रूप में प्रकट होती है। धाम्प्यारिमक मनुष्य इस संसार की वास्तविकताओं से मह नहीं मोड़ लेता धपिनु इस संसार में अधिक धरुधो सामग्री और धाम्प्यारिमक परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के एकमात्र उद्देश्य से काय करता है। कारण यह है कि धाम्प्यारिमक जीवन प्राकृतिक जीवन में ही जग्म लेता है। कबि हाने के कारण रबीन्द्रनाथ ने धुस्य जग्म का उपयोग धरुधय जग्म की ध्याया दिमान के लिए साधन के रूप में लिया है। वे ऐहिक जग्म को धारवत के प्रकाय से धामोकिठ करन हैं। जब उनकी धारमा इस भौतिक जग्म में नचरण करती है तो यह धारवतक बन जाता है।

यह संसार कोई ज्ञान या कंदा नहीं है और न इसकी धरुधरुई ध्रम ही है। वे धारमविकारों के लिए मुषबसर और मोग के लिए मान हैं। यह वह महान परम्परा है जो उपनिषदों के ऋषियों और गीता के रचयिता से जनी धा रही है। वे जीवन में धानन्द धानुभव करने हैं। कारण यह है कि जब स्वयं परमात्मा नैतुष्टि का बग्घम स्वीकार किया है तो हम इस संसार के बग्घम को क्यों स्वीकार न करें? यदि हमें यह देह कौी गरम वस्त्र पहना दिया गया है तो इसके लिए हमें धिक्कार करने की धारवतता नहीं है। आनन्दीय लम्बल धाम्प्यारिमक जीवन के मुनर गोर है। परमात्मा धाराग

में बैठ कोई सुस्तान नहीं है, अपितु वह सबके भन्दार रमा हुआ है और सबसे ऊपर है। हमारी पूजा के जो भी सन्ने लक्ष्य है उन सबमें हम उसकी ही पूजा करते हैं और जब भी हमारा प्रेम सच्चा होता है, तब हम उसीसे प्रेम कर रहे होते हैं। उस स्त्री में जो भर्ती है हम उस परमात्मा को धनुजब करते हैं। उस पुरुष में जो सच्चा है, हम उस परमात्मा को जान पाते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'मनुष्य का धर्म विषय पर (१९३१ में) दिए गए हिम्बर्ट व्याख्याओं में कहा था कि हमें अपने हृदय में भगवान की उपस्थिति को धनुजब करना चाहिए।

विरह के महान पुरुष संसार के दुःखों के प्रति संवेदनशील रहते हुए इस संसार में कार्य करते हैं। जब बुद्ध मैत्रा का प्रचार करत हैं और मीठा सबके प्रति स्नेह का उपदेश देती है तो उसका धर्म यही है कि हम दूसरे लोगों को केवल प्रेम के द्वारा समझ सकते हैं। जीवन का एक नुराई समझना और संसार को एक भ्रम मानकर बसना बिलकुल कठिनाता है। धर्मनाटक 'संघासी' में रवीन्द्रनाथ ने यह दिखाया है कि बुद्ध प्रकृति किस प्रकार उस सम्पाती से बचता लेती है, जिसने मानवीय इच्छाओं और प्रेम के बन्धनों को काटकर प्रकृति पर विजय पाने की चेष्टा की थी। उसने धर्म-धामको संसार से पृथक् करके संसार का सही ज्ञान पाने का यत्न किया था। एक छोटी-सी लड़की उसे इस शून्यमनस्कता के क्षेत्र से वापस जीवन के रंगमंच पर लौट लाती है। कोई भी समस्या कभी इतनी महान नहीं हो सकती कि वह निर्जीव संस्मरण का धर्म कर सके। संघासी के धार्मिकतम दृष्टा-भूह संस्मरण के हृदयस्थित संस्मरण टूट गए और कोसाहतपूर्ण जीवन में उसे डार खोल डालने की विषय कर दिया। संघाती ने जाना कि "महान दुःख के धर्म, असीम रूप की सीमाओं के अन्दर और धारणा की वास्तव मुक्ति प्रेम के धर्म प्राप्त होती है। हमें स्वर्ग की पृथ्वी पर लीन माना होगा, धारणता को एक बुद्धि में ज्ञान देना होगा और परमात्मा को इस संसार में ही प्राप्त करना होगा। संघाती लोग उन छोड़े हुए कूलों की तरह हैं जो मुलदस्तों में ठके होते हैं। वे बुद्ध और एक तो देखने में सुन्दर लगते हैं

परन्तु धीम ही मुरम्ह भवते हैं क्योंकि उन्हें मिट्टी से पोषण नहीं मिल रहा होता। नुबुब घोर बड़भुल होने के लिए मनुष्य को जीवन में पोषण प्राप्त करने की उद्यत रहना चाहिए। तपस्या चाहे व्यक्ति के विकास के लिए बितनी ही आवश्यक क्यों न हो किन्तु उसका जीवन उस पोषण के मस्वीकार कर देने के साथ करना नहीं किया जाना चाहिए, जिसके द्वारा विकास में सहायता मिलती है। सन्त भोग धनी सोमो के साथ बैठकर भोजन करने से शम्भार नहीं करते और म के बहुमूष्य प्रलेपों की सर्ग्य पर ही कोणें पृथराइ करते हैं।

यह सोचना मूष्यता है कि परभारमा हमारे दुग्धों घोर कल्पों से हमारी बदनामों घोर उपनामों से प्रसन्न होना है घोर उन सोमो म प्रम करता है, जो धगने-ध्राणको धणिक से धविर कष्ट लेते हैं। त्रावन एक महान् बरदान है और जो जोष हमसे प्रेम नहीं करते वे इसे पालन व शान्ति नहीं है। जो भोग धनी धारणाओं को बरदार कर शान्ति है घोर उष पालन का नाय देते हैं उन्हें धाने हम नाम के लिए कम न कम रबीन्द्रनाथ ठाकुर का नमर्षन प्राप्त नहीं हो सरता।

जीवन को मस्वीकार करने के लिए मनुष्य को किसी मठ में प्रारा करने या संन्यासी बनने की धारणकता नहीं है। हमम नै धनेक सोम धान धावदो वरंनों घोर निवेधों से धाकृण करके धी जीवन को मस्वीकार कर देते हैं। हिन्दु विचारधारा ने मूम विचार की ध्याना बरते हुए रबीन्द्र जीवन की निष्ठापन स्वीकृति कर बस देने है। हम जीवन को एक धमिधान के रूप में समझना चाहिए घोर हमारी मम्भारनाओं को पुरी तरह धनपन का धवसर देना चाहिए।

धम हमसे धनेक बोमिधों में बान करता है। हमक विधिय रण-रण है धिर भी हमारी सध्नी धावाइ एर हो है घोर यह है मानवीय रण घोर करणा की धमुगणा की धेय-धुण प्रेम की धाराइ घोर हम मर उन धावाइ को धवस्य ही नुन गकने है। म्भारण बोर्ड भी मबरतनीय धाया उन समार-ध्वधरमा ने धवस्य ही शुक्य होगी या एक मुग के धन

पर धीर दूसरे युग के घाघि पर विद्यमान होती है। हम कहते हैं कि क्लृप्त या स्नेह में व्यभिचर है परन्तु हमारे बैस में भी एक क्लृप्ति हो रही है। हमारे वहाँ भी निमोठिमें (अपराधी का बसा काटने की मछीन) है धीर हमारे अपने बध्म (धिकार) है, यद्यपि इतना धरस्य है कि हमारे वहाँ जो लोग धिकार बनते हैं, वे नरने के बाद भी अपना धिर अपने कर्मों पर लिए भूमते छिरते हैं। हम लोग केवल बनते-बोसते भूत बन गए हैं। हमारी निष्काम पीठिमा धीर बहुराई के प्रभाव के कारण, बिछे कि हम प्रसाधनों धीर वेष्टाओं द्वारा धियाने की कोधिध करते हैं हमारे जीवन धीरवी की बूकानों की धिकृतिमें से ठबाकर रची गई बस्त्रधारिणी मूर्तिमें की बाद धिमा देते हैं।

हमारे पहनतम धावेध समाज द्वारा बोपी गई धरों द्वारा धठिध बना धिए बाते हैं। इसके साथ उध बनीध धठिध धीर प्रभाज पर धीर ध्याज धीधिए, धिसमें धनेक ध्यधिध धीधन-धाधन करते हैं। धरि वे कुध्म धवेधन धीन समाज के हों तो उधै धनेक धिसुध्म धधिध धिन्ताध्म धिठानी धठि है धीर उनके नम्बे धीरध धिन संधर्ध में धीठते हैं धीर इध प्रकार के धेधना की धीध धीर कूठु धी स्मृठिमें द्वारा धामो धमध को नधठे बाते हैं। जब धाठमध्मबा क धुंमध धिधार उनके धठिधकुस धठिध्मों में से धुधठे हैं तो वे धठ की धीर धेठते हैं धीर धिमरेठ धीने धधते हैं। रधीन्धनाध की सहाधुधुठि इम प्रधधिध धुठिधोध के साथ नधै है कि समाज-धेवा केवल धन धंगठनों का धधध्य बन धाने में है जो धुमधान को बन्ध करना बाहते हैं या धठधि-धिरोध का प्रधार करते हैं। समाज-धेवा इध बाध में है कि धोयों की सहाधता धुठि समाधुठु के साथ धीने में की धाए।

धरि के क्य में रधीन्ध संधठन से धुधा करते हैं धीर उनका धिरधाठ है कि हर मधुध्य को धपने धंग से धपना धीधन-धाधन करना धाधिए। वे समूह के धठधाधार के धिरध धन रहे ध्यधिध के धुधध्याधी संधर्ध में ध्यधिध के धमधध है। समूह का धठधाधार ध्यधिध को कुधन देठा है। जो

व्यक्ति स्थापित व्यवस्था के विरुद्ध खड़ा होता है उसके माध्य में नातियों और मित्रा व्यवहार और घोर एकाकीपन रहता है। रबीन्द्रनाथ का घोर कष्ट के कवि हैं। मनुष्य के प्रयत्न की कर्मगता घायाघों में डूबे हुए जीवन की कठुता नारियों के जीवन के व्यवसाय और एकाकीपन के रबीन्द्रनाथ से बढ़कर इतित प्रेरक कम ही मिलेगे। इस योनि-समुदाय के सम्मुख उन अनगिनत उदाहरणों का उत्प्रेषण करना अनाभव्यक है किन्तु कि कवि ने सामान्य दशाघों में अत्यन्तित वेदना को अनाभूत किया है।

जितने भी मानवीय सम्बन्ध हैं उनमें सबम पवित्र प्रेम है और हमारे पास चाहे जो कुछ क्यों न कहते रहे हों परन्तु हमारा व्यवहार अर्थात्क है क्योंकि यह केवल एक ही सिद्ध के व्यक्तियों में आत्मसंयम और आत्मव्यवहार की आस्था की अवेता रणता है। जब तक हमारी नारियाँ केवल दासी और अनुपामनहीन पुरुषों का विनीता-वात्र समझा जाती रहेंगी तब तक हमारी सामाजिक व्यवस्था अदित बनी रहेगी। यह कवि कि स्त्री का सबसे बड़ा अम सतीत्य और पुरुष की अाव्यवस्था रहना है पुरुषों द्वारा किए जानेवाले व्यवहार के लिए अितकुल अावा बहाना है। जो अस्तु पुरुष के लिए अम है अरी स्त्री के लिए भी अम है। यह दुर्भाग्य की बात है कि हममें से ऐसे अनेक लोग हैं जो ऐसे अितान्य स्वेच्छावारी हैं जो अचित्त-अनुचित का अिवेक किए अिना अयनी अागवाघों के अापन के अा में अितियों का अयपीण करते हैं। वे अररगु हैं अितियों के अात हैं।

घरीर अागवा का अन्धिर है आध्यात्मिक अिवान का अरकरण। घरीर को अयवा घरीर के अिनी अंग को अंदा या अुचित अमअना अयम है। घरीर को अुक्त और अगोअन अमअर अरहर करना भी अंता ही अयम है। अिना अेअ के आधैरिक अावाअ अिरी अेअाअुति है। यह अाग अिवाह और अिवाह-अिअ अेलों ही अागघों में अात है। जो स्त्री अिनी लेगे अुक्त को अिने अर अर अरी अरनी, केवल अमलिए कि अर अमअा अित है अर्थात् अमअर अयना घरीर और अेनी है, अर अयना अंता ही

निर्भय दुरूपयोग कर रही होती है जिसका कि वह पति को अपना अधिकार पाने का हठ करता है। प्रेम साम्यात्मिक और सुखविपूर्व होता है। यह अन्तरात्मा और सुख का विषय है, कानूनों और संहिताओं का विषय नहीं। प्रेम के बिना विवाहित जीवन वास्तव में बर्बर कराने जाता है। धार्मिक पंडितों अथवा सामाजिक नियमों के प्रति आज्ञापालन आत्म नियंत्रण का एक रूप है ठीक वैसे ही जैसे कि अपने महत्तम अस्तित्व के आज्ञापालन के लिए किमा जा रहा कर्म जीवन का प्रतिबन्ध आदेश होता है। जिस प्रकार सौम्य समस्वरता से उच्चतर है सत्य सुसंपत्ति की अपेक्षा अधिक उच्चतर है उसी प्रकार प्रेम विधान की अपेक्षा उच्चतर है। यह धर्म की भाँति प्रत्येक वस्तु को सुख कर देता है।

रबीन्द्रनाथ के नाटक 'सती' में उमा उस पुरुष को प्रवीण करने से इन्कार कर देती है, जिसे वह प्यार नहीं करती बल्कि वह उसका पति या और बने ही उसकी घोर से लोचों में उस कुछ भी बचन क्यों न बिये। अब वह बीबाजी को जिसके साथ उसका विधिपूर्वक विवाह हुआ था छोड़कर चल देती है और एक अन्य व्यक्ति से विवाह कर लेती है, तो वह यह कहकर सफाई देती है "मैंने अपना धरिण ठीकी समर्पित किया, जबकि प्रेम ने उसे मुझे दे दिया था।" अब उसकी माता कहती है "अपने अपवित्र हाथों से मुझे मत छू" तो वह उत्तर देती है "मैं उतनी ही पवित्र हूँ जितनी कि तुम हो।" उसकी भाभी घोर और पूर्ण सुखा से उत्कण्ठ पिता बहुत प्रभावित होता है और वह कहता है "मेरी प्यारी बच्ची बेर पाठ था था। मैं अनुपम-निर्मित विधान केवल आश्चर्य है, जो नवयौव के आदेश की अट्टान पर सहरो की फुहारों की भाँति छितरा जाते हैं।" हमारे धर्म कारों और वैधानिक प्रतिबन्धनों ने इस बात को अनुभव नहीं किया कि हमारी आरिषों में भी आत्मा है। उनमें भी अपने जाने की साक्षात्कार है और वे कोई ऐसा साथी चाहती हैं जो उनके स्वप्नों और कामनाओं में हिरसा बनाए और अब कोई पुण्य और स्त्री एक-दूसरे को न केवल अपनी धर्म या पर या सम्पत्ति समर्पित करते हैं, धरिण अपनी दुर्बलताएँ, अपनी

सहस्रायता भवन हृदय की आवश्यकताएं भी समर्पित करते हैं तो वे एक ऐसे प्रवेद्य में प्रवेश कर जाते हैं, जिसका निर्माण मानवीय हार्मों के समुदाय नहीं हुआ। पवित्र सनके हृदयों के प्रेम द्वारा हुआ है। उनका दिमन अनुमोदित बसे ही न हो किन्तु पवित्र प्रबन्ध होता है।

४

निष्कर्ष

रबीन्द्रनाथ की सब रचनाओं में शून्य विद्यपदाने स्पष्ट दिखाई देती है (१) आध्यात्मिक मूर्तियों की अठितम तथा आध्यात्मिक ईमानदारी और आध्यात्मिक जीवन के सरकार द्वारा प्राप्त की जानी है (२) वेदम नियम प्रयत्न तथा की व्यपत्ता और जीवन के पवित्र प्रयत्न सम्पूर्ण विकास की साक्षात्पत्रा, और (३) सूत्रके प्रति, यहाँ तक कि शीतों और पवित्रों के प्रति भी सुनिश्चित सहामुक्ति। यह देखकर बहुत सन्तोष होता है कि एक भारतीय नेता ने जीवन के इन वास्तविक मूर्तियों पर ऐसे समय ध्यान दिया है जबकि इनकी सारी पुण्यी बस्तुएं टूट-फूटकर समाप्त हो रही हैं और हजारों मर्त् बस्तुएं सामने आ रही हैं।